कुम्भ-दर्शन

– जगदीश गुप्त

अथ-इत्यलम्

आज अनेक देश अनेक विचारधाराओं के प्रतीक बन रहे हैं | भारतवर्ष भी निश्चय ही एक प्रतीकार्थ रखता है जिसे अधिकतर लोग अध्यात्मवादी कह कर संतुष्ट हो जाते हैं | प्रतिक्रिया स्वारूप भौतिकवादी अध्यात्मवाद का विरोध करना अपना प्रधान उद्देश्य मान लेते हैं फलतः दोनों इस देश की आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाते |एक पक्ष ब्रह्म, ईश्वर, मोक्ष, भक्ति तथा धर्म की भाषा बोलता है तो दूसरा उन्हें अनावश्यक, भ्रामक, अंधविश्वासपरक तथा प्रतिगामी कह कर विशुद्ध भौतिकवादी मूल्यों द्वारा देश को परिभाषित करना चाहता है | भारतवर्ष ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य को दार्शनिक मान्यता दी है और इसी आधार पर लोकतंत्र और गणतंत्र की प्रतिष्ठा की है | भारतीय संविधान भी इसी धारणा से उत्पन्न हुआ है | जिन देशों में बंद-समाज व्यवस्था श्रेयस्कर मानी गयी, वे भी इधर तेजी से पुनर्विचार और पुनर्व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहे हैं |

कुम्भ-पर्व आत्ममंथन को समुद्र-मंथन का रुपक देकर अमृत-कलश की कल्पना लोक-जीवन में साकार करने में सफल रहा है | अविश्वासी भी श्रद्धालुओं तथा स्नानार्थियों से जुड़ी सहस्त्राब्दियों से व्याप्त जन-चेतना की उपेक्षा नहीं कर सकता |धर्म का विरोध करनेवाले अपने परिवार और परिवेश से अपने को तोड़ने का खतरा नहीं उठा सकते | विरोध की भाषा आत्म-चिंतन की भाषा बन जाती है जो इस देश की संस्कृति का मूल आधार रहा है | कुम्भ-दर्शन मेरे निकट आत्म-दर्शन का पर्याय हो गया इसीलिए मैंने उसके लिखने का दायित्व स्वीकार किया | जो भी लिखा संलग्नपूर्वक लिखा पर सच्चा आत्मपरितोष तभी मिलेगा जब मेरे लेखन को व्यापक स्वीकृति मिल जाय |

मैं मानवतावादी हूँ और मानवता ही मेरा धर्म है | नये मनुष्य की प्रतिष्ठा के प्रति संकल्पबद्ध भी हूँ | विडम्बना यह है कि अध्यात्मवादी और भौतिकवादी दोनों ही बहुधा मानव-विरोधी होकर अमानवीय आचरण करने लगते हैं |उस समय मेरा प्रतिवाद सहज रूप में कवि-कलाकार की तरह मुखर हो जाता है | इत्यलम् , साभार |

मुझे लक्ष्यवेध काम्य

बाण और वाणी में देखता हूँ क्रिया-साम्य –'युग्म' से

नागवासुकि, प्रयाग

1-12-88

**

अनुक्रम

1. कुम्भ दर्शन 2. कुम्भ के पर्यायवाची शब्द 3. कुम्भ की व्युत्पत्ति 4. वेदों में कुम्भ की वास्तविकता 5.कुम्भ की परम्परा दक्षिण मे भी प्रचलित 6. कुम्भकोणम् का तीर्थ-क्षेत्र, प्रयाग-क्षेत्र की स्मृति दिलाता है 7. भरत के नाट्यशास्त्र में कुम्भ की सार्वजनिक भूमिका 8.अन्य कुम्भ स्थलों से प्रया की महत्ता अधिक 9. कुम्भ सम्बंधी तीन कथाएं 10. समुद्र मंथन का प्रतीकार्थ और अमृत-कुम्भ 11.समुद्र मंथन की कथा और पौराणिक पृष्ठभूमि 12. कुम्भ मेला संसार का सबसे बड़ा मेला 13.कुम्भ का ज्योतिषपरक पक्ष 14.प्रयागस्थ संगम स्नान का बहुआयामी संकल्प 15. यज्ञ पुरुष का मस्तक है प्रयाग 16. शताध्यायी में प्रयाग और त्रिवेणी की विशद यश-गाथा 17.गंगोद्भेद तीर्थ : गंगा-यमुना की बीच विभेद और समंवय भावना 18. साधु समाज और सन्यासियों का संगठन 19. मृत-अमृत का विवेक और भारतीय संस्कृत

20. गंगा

इसी पुस्तक से

अन्य धर्मों में विश्वास रखने वाले भी इस बात से अवश्य प्रसन्न होंगे कि भारतवर्ष मूलतः आस्थाशील लोगों का देश है | शिवत्व के प्रति आस्था ही हिंदुत्व की सबसे बड़ी पहचान है |उदारता,सहनशीलता तथा सौंदर्यप्रियता उसकी सांस्कृतिक एवं उसके धार्मिक भावना के अभिन्न अंग रहे हैं | नये मनुष्य की कल्पना और उसके प्रतिमूर्त होने की सारी संभावनाएं इसी अहिंसक देश में दिखायी देती हैं |

•

धर्म का अर्थ भारत में सदा मानव-धर्म माना गया है | इसीलिए धर्मनिरपेक्षता उसे प्रेरक और आत्मीय नहीं लगती परंतु जब तथाकथित 'धर्म' मानवता से विपथ होने लगते हैं तो धर्मनिरपेक्षता ही धर्म बन जाती है |

•

किसी पवित्र उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा ही तीर्थ-यात्रा कहलाती है, विशेषतः तब जब वह किसी पुण्य-स्थल से सम्बद्ध हो | जो पापों को क्षीण करे वही स्थल पुण्य-स्थल माना जाता है और पाप वह जो मन की शांति में बाधक हो तथा सामाजिक स्तर पर जो अवांछित एवं अकल्याणकारी माना जाता हो |

•

जहाँ भी दो या दो से अधिक प्रवाह एक साथ मिलकर बहने लगाते हैं वहीं प्रयाग हो जाता है | प्रयागराज मनुष्यों का ही संगम नहीं कराता वरन् वह भाषाओं का संगम भी बन जाता है जिसमें संस्कृत, हिंदी तथा देश की समस्त भाषाएं सम्मिलित हो जाती हैं यहाँ तक की अंग्रेजी भी राष्टीयता की संवाहिका बन जाती है |

•

कुम्भ दर्शन 'कुम्भ' घट का पर्याय है और घट शरीर का,जिसमें घट-घट व्यापी आत्मा का अमृत-रस व्याप्त रहता है अतः कुम्भ दर्शन तत्वतः आत्मदर्शनहै | समान उद्देश्य से एकत्र विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न भाषाओं से आये पुण्यकामी स्नानार्थी सांस्कृतिक दृष्टि से एकता के जिस सूत्र में हजारों वर्षों से बंधे हुए हैं वह बंधन, बंधन न रहकर मुक्ति का द्योतक बन जाता है | मुक्ति की धारणा मनुष्य की स्वाभाविक स्वातंत्र्य-चेतना का ही आध्यामिक रूप है | अतः लोकतंत्र ने सामाजिक स्तर पर ग्राहय एवं वरेण्य माना है | मानवता अनेक-स्तरीय और अनेक-आयामी है, अतः मनुष्यों का मिलना स्वयं एक अनुभव बन जाता है | मनुष्य के भीतर की तरलता, सद्भाव और सद्वृति के द्वारा प्रवाह के रूप में प्रकट हो जाती है और नदियों के संगम से भी अधिक प्रेरणाप्रद लगने लगती है | पत्थर से पत्थर का जुड़ना वह बात पैदा नहीं करता जो बूँद से बूँद का जुड़ना | बूँद अपनी सीमाएँ तोड़ कर दूसरी बूँदों में मिलते हुए जलाशय, सरिता और समुद्र बन जाती है | मनुष्य-समाज जब जड़ताग्रस्त हो जाता है तो पत्थरों जैसा कठोर व्यवहार करने लगता है किंतु जब वह चेतना से परिचालित होता है तो उसमें द्रवणशीलता ,उदारता और आत्मीयता उत्पन्न हो जाती है |बंधन अपने आप टूटने लगते हैं | व्यक्ति-चेतना के भीतर समाज की विराट प्रतीति होनेलगती है |मनुष्य से मनुष्य का मिलन स्वयं एक घटना बन जाती है |यात्रा यों भी मनुष्य को गतिशील बनाती है पर तीर्थ-यात्रा उसे पवित्रता का संस्कार प्रदान करती है |अपने भीतर झांक कर प्राणी स्वयं प्राण-जल की निर्मलता का अहसास करने लगता है और उसका विवेक उसे बेचैन कर देता है |अपने कल्याण का मार्ग व्यक्ति स्वयं खोजने लगता है जब समान स्वभाव और समान उद्देश्य के साधक परस्पर मिलते हैं तो एक अपूर्व उत्सव का अनुभव होता है |इस देश में ही नहीं सर्वत्र यह प्रवृत्ति कार्यशील रही है और इसी के सहारे प्रगति-पथ निर्धारित होताअ है | शांति और क्रांति दोनों के बीज इसी सम्मिलन-वृति से उत्पन्न होते हैं और नये आत्म-साक्षात्कार का अवसर देते हैं | देव हो या असुर सब अमृत चाहते हैं | कोई नहीं चाहता विष-पान करना | कोई नहीं चाहता विष-घट बनना | राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी

चार पंक्तियों में जो बात कही है वस्तुतः आधुनिक संदर्भों में भी कुम्भ-दर्शन बनाने की क्षमता रखती है |

घट क्यों भरेंगे नहीं कुम्भ-पर्व पाने से,
जो भी न हो इतने जनों के कहीं जाने से |
लगता है, ध्यान इस ओर भी आवे तो,
भूतल ही स्वर्ग बने इनके बनाने से |

यह वही संदेश है जो साअकेत में उन्होंने जन-जन के प्रति राम से कहलाया है |

संदेह यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया |
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया ||

कुम्भ के पर्यायवाची शब्द

कुम्भ शब्द के पर्याय पर किसी ने विचार किया है या नहीं यह मैं नहीं जानता | सामान्यतया घट, भाण्ड और कलश के पर्याय माने जाते हैं | अगस्त को कुम्भज कहा गया है |इससे कुम्भ का अर्थ कृत्रिम गर्भ या कलशोदधि भी माना जा सकता है जो घट रूप में माना जाता होगा | गर्भ से बना गर्वा गुजराती में घट का द्योतक है और हिंदी में उसका करवा(चौथ) शब्द सुपरिचित है | पौराणिक कथाओं में 'कलशोदधि' शब्द प्रयुक्त है जिसमें कलश में ही समुद्र की कल्पना की गयी है| दक्षिण भाषाओं में उद्कुंब तम्बगे,और चेम्बु शब्द प्रचलित हैं | 'उद्कुंब' शब्द मनुस्मृति में 'उद्कुम्भ' रूप में आया है जो अध्याय दो श्लोक 82 में जलपूरित घट के रूप में पवित्र माना गया है और उसके साथ पुष्पों और कुशों का भी उल्लेख किया गया है | मिट्टी और गाय के गोबर उसके साथ संलग्न होकर प्रायश्चित हेतु भिक्षा मांगने के लिए आवश्यक बताये गये हैं | 'नाभि' शब्द भी यद्यपि कुम्भ का पर्याय नहीं है तथापि उसका वही तात्पर्य माना जा सकता है क्योंकि 'मनुस्मृति' में नाभि से ही सृष्टि की उत्पत्ति प्रदर्शित है | यह विचार ब्रहमा के संदर्भ में भी प्रचलित है नाभि में अमृत रहता है यह कल्पना कुम्भ के साथ सीधे-सीधे जुड़ जाती है | रावण की नाभि में अमृत रहताथा इसलिए वह युद्ध में विजयी होता था | जब विभीषण के बताने से राम ने अग्निबाण से वह अमृत सोख लिया तभी रावण की मृत्यु हुई |

नाभीकुंड सुधाबसु याके |
नाथ जियत रावन बल ताके ||

इस प्रकार नाभि-कुंड अमृतपूरित कुम्भ की कथा से जुड़ जाता है |कुम्भ के दो रूप मिलते हैं जो भिन्न-भिन्न स्भ्यताओं के प्रतीक हैं |टोटीदार कुम्भ

बाद के विकास को सूचित करता है और उसका सम्बंध सेमेटिक सभ्यताओं से ज्यादा है | सिंधुघाटी सभ्यता में दोनों प्रकार के कुम्भ मिलते हैं | खुदाई से जो कुम्भ मिले हैं वे आर्य सभ्यता के भी मिले-जुलेपन के द्योतक हैं पर गोलाकृत कुम्भ अधिक प्राचीन और भारतीय कल्पना को अधिक मूर्त करता है | कुम्भ की पौराणिक कल्पना में भी वही रूप मिलता है | उत्खनन से मिले बड़े छोटे कुम्भों की आकृति इतनी विविधात्मक है कि उन्हें एक जैसा कहना कठिन है | उनके आधार पर विकास-क्रम का निर्धारण भी दुष्कर है, पर विद्वानों ने इस ओर ध्यान दिया है | सौंदर्य की दृष्टि से मंगल-कलश की कल्पना असाधारण रूप से ललित दिखायी देती है | जैसे वारह और गऊ को देवताओं से पूरित चित्रित एवं मूर्तित दिखाया गया है, वैसा ही घट के साथ हुआ है | नीचे घट-पूजा के श्लोक दिये जा रहे हैं और अंत में ज्योतिषमूलक धारणा से बने उसके रूप को प्रदर्शित किया जा रहा है जो वहाँ के पिछले सिंहस्थ पर्व पर ज्योतिर्विद व्यास द्वारा प्रकाशित किया गया था –

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः |
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्य मातृगणाः स्मृताः ||
कुक्षौ तु सागराः सर्वे, सप्तदीपा वसुंधरा |
ऋग्वेदोथ यजुर्वेदो सामवेदोथर्वणः |
अग्नेश्व सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रितः ||

कुम्भ का स्वरूप दो श्लोकों में वर्णित है उसमें त्रिदेवों, सप्तसागरों, सप्तद्वीपों, चारो वेदों को उस कलश के विभिन्न अंगों में निवासित कहा गया है | देवताओं के साथ ही कुम्भ प्रार्थना के मंत्र में सब तीर्थों और सब देवों एवं समस्त भूतों का उल्लेख मिलता है |

देव-दानव संवादे मथ्यमाने महोदधौ |
उत्पन्नोसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् |
त्वंत्तोये सर्व तीर्थानि, देवाः सर्वे त्व्यि स्थिताः |
त्वयि तिष्ठंति भूतानि,त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ||

•

कुम्भ की व्युत्पत्ति

'प्रयाग कुम्भ रहस्य' में कुम्भ की आठ व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं जो कुछ तो शब्दाधारित हैं और कुछ पौराणिक | 'कु' शब्द पृथ्वीवाचक है इससे 'कुज' शब्द बनता है जो मंगल का द्योतक है |

(– कुं पृथ्वी भावयंति संकेतयंति भविष्यकत्कल्याणादि काय महत्याकाशे स्थिता 3 वृहस्पत्यादयो ग्रहाः संयुज्य हरिद्वार-प्रयागा दिततत्पुण्यंस्थानविशेषानुद्दिश्य यस्मिन् सः कुम्भः) |

इसमें कुम्भ की जो व्युत्पत्ति दी गयी है उसमें हरिद्वर प्रयागदि के कुम्भों का अर्थ लिया गया और उसी को प्रधान माना गया है |

दूसरी व्युत्पत्ति में 'कं जलं उम्भति पूरयति अवर्षणदि दुर्भिक्षेभ्यो दूरयतीति कुम्भः' के आधार पर अवर्षण और दुर्भिक्ष को दूर करने वाले को कुम्भ कहा गया है |

तीसरी व्युत्पत्ति में 'कुं' से उसी प्रकार उत्पत्ति की गयी है जैसे 'क' से और 'कुम्भ' को मंगलकारी बताया गया है | पूर्णघट भारतीय दृष्टि से अब भी मंगलकारी माना जाता है | इसी आधार पर अर्धकुम्भ और पूर्णकुम्भ की महत्ता निर्धारित की जाती है |

चौथी व्युत्पत्ति महात्माओं के संगम से जुड़ी है |– 'कुः पृथ्वी उभ्यतेनुगृह्यते उत्तमोत्तम महात्मसंगमैः तदीय हितोपदेशैः यस्मिन सः कुम्भः |' हितोपदेश ने महात्माओं के संगम को पृथ्वी मात्र के लिए उपकारक माना है और उसे भी कुम्भ कहा है |

पांचवी व्युत्पत्ति में पाप-प्रच्छालन और पुण्य-प्रवर्धन |

छ्ठी व्युत्पत्ति में दीपन या वर्धन का भाव बताया गया है |

सातवीं व्युत्पत्ति में–'कुं पृथ्वीं भावयति पोषयति विविध यागादिभिरिति वा कुम्भ' विशेष महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसे यज्ञ-कर्म से जोड़ा गया है | अनुष्ठानों और यज्ञों की परम्परा जहाँ चले वहीं कुम्भ है |आठवीं और अंतिम व्युत्पत्ति में– 'कुं कुत्सितं उम्भति दूरयति जगद्धितायेति वा कुम्भः' इसका आशय यही है कि जो संसार के कल्याण के लिए समस्त कुत्सितों अथवा दोषों को दूर करे वही कुम्भ है |

•

<u>वेदों में कुम्भ की वस्तविकता</u>

यह सही है कि वेदों में कई जगह कुम्भ शब्द प्रयुक्त हुआ है और जल-प्रवाह से उसका सम्बंध भी है | एक जगह चार की संख्या भी निर्दिष्ट है पर न तो उसका सम्बंध अमृतमंथन कथा से जुड़ता है और न हरिद्वार-प्रयाग-उज्जैन और नासिक के चार कुम्भ-पर्वों से कोई संगतिबनती है | ऐसी स्थिति में वास्तविक तात्पर्य का विचार करना उचित होगा |

जघानं वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पूरो अरदन्न सिंधून |
विभेद गिरं नवमित्र कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्व युग्भिः ||

– ऋग्वेद, 10/89/7

इसका अर्थ है– इंद्र,सूर्य अथवा विद्युत मेघ को मारता है | जिस प्रकार वह कुठार जंगलों को काटता है उसी प्रकार वह मेघों की नगरियों को ध्वस्त करता है | और नदियों को पानी से युक्त करताहै | वह नये घड़े के समान मेघ का भेदन करता है और अपने सहयोगी मरुतों के साथ वर्षा जल को अभिमुख करता है |

–ऋग्वेद, भाषा-भाष्य,पृ.888-889

दूसरी टीका में नये घड़े की जगह कच्चे घड़े शब्द दिया है पर आशय वही है | प्रयाग-कुम्भ रहस्य में इसका अर्थ करते हुए कहा गया है : "कुम्भ पर्व में जाने वाला मनुष्य स्वयं अपने में फल रूप से प्राप्त होने वाले दान होमादि सत्कर्मों से काष्ठ काटने वाले कुठारादि की तरह अपने पापों का प्रक्षालन करता है | जिस प्रकार गंगा नहर अपने ट्टों को नष्ट करती हुई प्रवाहित होती है उसी प्रकार कुम्भ-पर्व अपने पूर्व-संचित कर्मों से प्राप्त हुये शारीरिक पापों को नष्ट करता है और नूतन बनावटी पर्वत की तरह बादल को नष्ट-भ्रष्ट कर संसार में सुवृष्टि प्रदान करता है |"

पृ.2-3

स्पष्ट है कि इसमें 'कुम्भ-पर्व', गंगा नहर और संचित कर्मों का कोई संदर्भ नहीं है | यही कह सकता हूँ–

जाकी रही भावना जैसी |

प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ||

ऋग्वेद के अन्य मंत्र का संदर्भ दिया गया है – 12/3/23 जबकि

इस वेद में केवल दस मण्डल हैं | कहीं लेखन में त्रुटि हुई है | 'कुम्भी वेद्यां' इसका भी जो अर्थ यह दिया गया है वह भी कुम्भ-पर्व से सम्बद्ध नहीं है |

शुक्ल यजुर्वेद का जो मंत्र उद्धृत किया गया है– 19/87 | संदर्भ सही है | मंत्र इस प्रकार हैं –

कुम्भो वानेष्ठुर्जनिता शचोभिर्यास्मित्रगे योन्यां गर्गो नंतः |
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्पत्ते दुहे च कुम्भी स्वधा पितृभ्यः ||

कुम्भो और कुम्भी का अर्थ स्त्री-पुरुष के संयोग से संतानोत्पत्ति का रुपक प्रस्तुत किया गया है | द्रष्टव्य भाषा-भाष्य दयानंद सरस्वती, पृ. 729, यहाँ पर इसका अर्थ दिया गया है– "कुम्भ पर्व स्त्कर्म के द्वारा मनुष्य को इह लोक में शारीरिक सुख देने वाला और जन्मान्तरों में उत्कृष्ट सुखों का देने वाला है |" पर्वपरक यह अर्थ उदात्त भावना से युक्त है परंतु यह प्रश्न उठता ही है कि क्या यह अर्थ सही है अथवा नहीं | सत्य की खोज गहन दायित्व से आती है | अभीष्ठ को आरोपित करना ठीक नहीं |

अथर्वेद के दो मंत्रों में भी कुम्भ शब्द आता है | उन पर भी विचार करना है |

पूर्णः कुम्भोधिकाल आहितस्तं वै,
पश्यामो बहुधा नु संनतः |

–अथर्व 19/53/3

स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यइ,
काल समाहु परमे व्योमन ||

इसका अर्थ क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने इस प्रकार किया है – "समय के प्रयोग से धर्मात्मा लोग अनेक सम्पत्तियों के साथ सद्मति प्राप्त करते हैं | वह महा प्रबल सब स्थानों में परमात्मा के सामर्थ्य के बीच वर्तमान है, उसकी महिमा को बुद्धिमान जानते हैं |"

– पृ.1077

शास्त्री जी ने इसको इस रूप में प्रस्तुत किया है –

"हे संत गण ! पूर्ण कुम्भ समय पर (बारह वर्षों के बाद) आया करता है जिसे हम अनेकों बार प्रयागादि तीर्थों में देखा करते हैं | कुम्भ उस समय को कहते हैं जो

महान आकाश में ग्रह राशि आदि के योग से होता है |"

– प्रयाग- कुम्भ- रहस्य,पृ.3 यहाँ 'पूर्ण कुम्भौ' शब्द पूर्ण कुम्भ पर घटित हो जाते हैं पर 12 वर्ष के कुम्भ का भाव स्वकल्पित एवं आरोपित लगता है | प्रयागादि तीर्थों का संदर्भ भी वेदों में नहीं है | मन की भावना अभाव पूर्ति कर देती है, इसमें संदेह नहीं पर कितनी दूर तक,यह बात विचारणीय हो ही जाती है | अगला मंत्र इस रूप में दिया है–

चतुरः कुम्भांश्र्वतुर्धा ददामि |

–अथर्व

संदभ सही है अतः खोजने में कठिनाई नहीं हुई |डॉ. बाहरी के पुस्तकालय में सभी वेद सुलभ हो गये | अपूर्ण उद्धरण का पूरा रूप इस प्रकार है | इसमें 'ददामि' शब्द है ही नहीं |

चतुरः कुम्भाश्र्वतुर्धा क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्या एअतास्त्वा धारा उपयंतु स्त्वाः स्वर्गे लोके मधूमत्

पिं ना उपत्वा तिष्ठंतु पुष्पकरिणोः समंताः ||

इसका अर्थ टीका में इस प्रकार दिया हुआ है –

"परमेश्वर ब्रहमचर्यादि चारों आश्रम द्वारा और चारों वेद द्वारा धर्म-अर्थ आदि चार पदार्थ देता है | इसलिये मनुष्य चारों आश्रम और चारों वेदों के यथावत् सेवन से चारों पदार्थ प्राप्त करके सदा आनंदित रहे |"

•

कुम्भ की परम्परा दक्षिण में भी प्रचलित

सामान्यतया यही माना जाता है कि द्वादश वर्षीय कुम्भ की परम्परा उत्तर भारत से चलकर अधिक से अधिक मध्यभारत तक जाती है | दक्षिण से उसका कोई वास्ता नहीं है | मैंने पाया कि जैसे उत्तर भारत के प्रसिद्ध तीर्थ काशी-मथुरा, दक्षिण में कांची और मदुरइ के रूप में स्थापित हो गये, वैसे ही प्रयागराज का कुम्भ-पर्व भी दक्षिण में कुम्भकोणम् के नाम से विख्यात हो गया | आश्चर्य यही है कि उत्तर भारत में अभी तक इसकी कोई जानकारी न तो लोक में प्रचलित है और न पण्डे-पुरोहितों द्वारा विज्ञापित की जाती है | पुराणों में भी कुम्भ की मान्यता केवल चार स्थलों हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, और नासिक तक सीमित मानी जाती है | दो स्थान विंध्य के इधर और दो स्थान विंध्य के उधर | महाराष्ट्र से उस ओर जाकर दक्षिण में उसकी कोई संभावना नहीं सोची गयी | किंतु, वास्तविकता यह है कि कुम्भ परम्परा का पाँचवा स्थान धुर-दक्षिण में स्थित है और सैंकड़ों

वर्षों से लोक-प्रसिद्धि भी प्राप्त है | डॉ.नागप्पा तथा डॉ. विश्वनाथ अय्यर ने इसकी सम्पुष्टि की, जब उनसे अभी वृन्दावन में मेरी भेंट हुई थी | कुम्भकोणम् निवासी प्राचार्य डॉ. परशुरामन् ने इसकी पत्र द्वारा सम्पुष्टि की है | यथा–

" कुम्भकोणम् में प्रत्येक वर्ष साधारण मखम् उत्सव मनाया जाता है लेकिन बारह वर्षों में एक बार महामखम् उत्सव मनाया जाता है | उस समय पूरे भारतवर्ष से लाखों लोग यहाँ आकर महामखम् तालब में स्नान करते हैं | इसी महामखम् उत्सव को दक्षिण भारत का कुम्भ मेला कहते हैं |"

•

कुम्भकोणमका तीर्थ-क्षेत्र प्रयाग- क्षेत्र की स्मृति दिलाता है

संयोगवशात् 'कुम्भ' सम्बंधी जिज्ञासा से प्रेरित होकर जब मैं कल्याण का तीर्थांक देख रहा था तो सहसा मेरी दृष्टि 'कुम्भकोणम्' पर टिक गयी | शब्द-साम्य ने अर्थ की खोज की और प्रवृत्त किया और मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि वहाँ भी कुम्भ की जीवित-जागृत परम्परा चली आ रही है | देश की एकता का अनुभव बिना सजग दृष्टि के संभव नहींहै | उसके लिए रूढ़ियों से ऊपर उठकर परम्परा का विस्तार भी अपेक्षितहै | नीचे तथ्यात्मक विवरण दिया जा रहा है जो बहुतों के लिए ज्ञान-वर्धक और प्रेरक होगा |

'कुम्भकोणम्' का संस्कृत ना कुम्भघोणम् है | कहते हैं ब्रह्मा जी ने एक घड़ा (कुम्भ) अमृत से भरकर रखा था | उस कुम्भ की नासिका (घोण) अर्थात मुख के समीप एक छिद्र में से अमृत चूकर बाहर निकल गया और उससे वहाँ की पाँच कोस तक की भूमि भीग गयी | इसी से उसका नाम कुम्भघोण (कुम्भकोण) पड़ गया–

कुम्भस्य घोणतो यस्मिन् सुधापूरं विनिस्सृतम् |
तस्मात् तत्पदं लोके कुम्भघोणं वदंति हि ||

(तीर्थांक,पृ. 364)

यहाँ कुम्भ का मेला लगता है | कई लाख यात्री उसमें एकत्र होते हैं | यह दक्षिण भारतका एक प्रमुख तीर्थ है | प्रति बारहवें वर्ष जलाशय के किनारे कुम्भ राशि में ही गंगा-तट जैसा पर्व-स्नान होता है |

महामघम, नागेश्वर, शर्गपाणि और कुम्भेश्वर आदि प्रसिद्ध मंदिर दर्शनीय माने जाते हैं |सभी दक्षिण शैली में बने हैं | नागेश्वर नाम मुझे प्रयाग के नागवासुकि मंदिर की स्मृति दिलाता है | मूलतः यह क्षेत्र शैव परम्परा से जुड़ा रहा बाद में वैष्णव मंदिर भी निर्मित हो गये | भृगु द्वारा नारायण के वक्ष पर पाद-प्रहार यहीं हुआ ऐसा माना जाता है |

गंगा-यमुना-सरस्वती आदि नौ नदियाँ तथा अनेक देवी देवता यहाँ स्थापित हैं | कुम्भेश्वर में घड़े के आकार की शिव-मूर्ति असाधारण लगती है | नाम की सार्थकता स्वतः स्पष्ट है | यह स्थान चिदम्बरम् के पास है और समुद्र-तट से बहुत दूर नहीं है जैसे अन्य कुम्भ-स्थल |

शताध्यायी का पुनः अनुशीलन करते हुए मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि उसमें 'कुम्भकोणम्' का विशेष महत्व के साथ उल्लेख है और पापों के शमन में सर्वप्रथम उसका नाम लिया गया है | प्रयाग को उस क्रम में सबसे ऊपर स्थान दिया गया है |

अन्य क्षेत्रे कृतंपापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति |
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं कुम्भकोणे विनश्यति ||8||
कुम्भकोणे कृतं पापं वाराणस्यां विनश्यति |
तत्रापि यत्कृतं पापं प्रयागे तद्विनश्यति ||9||

–पूर्वार्ध, अध्याय–3

इस संदर्भ को देखकर यह सुनिश्चित हो जाता है कि पुराणकार को दक्षिण भाअरत का संदर्भ पहले से ही ज्ञात था और उसने पाप-शमन की विशेष शक्ति कुम्भकोणम् से ही आरम्भ की है | वाराणसी को उससे ऊपर और प्रयाग स्थित संगमस्थल को सर्वोपरि महत्ता दी है | आगे के श्लोकों में प्रयाग से आगे यमुना,फिर सरस्वती तब गंगा और अंततः 'संगमतीर्थ नायके' का उद्घोष किया है | कौन जाने कुम्भ की परम्परा में पाप-शमन का सूत्र दक्षिण से आया हो और उत्तर भारत में उसे विशेष गौरव मिला हो | अब यहाँ तक अल्गाव हो गया है कि कुम्भ स्थलों में दक्षिण का ध्यान नहीं आता | मैंने उसे पुनः सम्बद्ध करने का विनम्र उपक्रम किया है | कुम्भ स्थलों में पाँचवाँ नाम कुम्भकोण का होना ही चाहिए |

•

भरत के नाट्य-शास्त्र में कुम्भ की सार्ववर्णिक भूमिका

भरत के नाट्य-शास्त्र में जिन नाटकों के मंचन का उल्लेख मिलता है उनमें अमृतमंथन सर्वप्रथम गिना जाता है | भारतीय नाटक देवासुर-संग्राम की पृष्ठ-भूमि में जन्मा, इसे जानने पर कुम्भ का महत्व और बढ़ जाता है और प्राचीनता भी अधिक सिद्ध होती है | 'अमृत-मंथन' के अभिनय से पूर्व कुम्भ-स्थापन का भी उल्लेख भरत ने किया है पर वह पूजा के अंग रूप ग्रहण किया गया है | 'अमृत-कुम्भ' से उसका सीधा सम्बंध नहीं है किंतु कुम्भ की कल्पना अवश्य उससे सम्बद्ध मानी जा सकती है |

कुम्भं सलिल-सम्पूर्णं पुष्पमालापुरस्कृतम् |
स्थापयेद्रंगमध्ये तु सुवर्णं चात्र दापयेत् ||72||

(तृतीय अध्याय)

एवं तु पूजनं कृत्वा मया प्रोक्तःपितामहः |

आज्ञापय विभौ क्षिप्रं कः प्रयोगाः प्रयुज्यताम् ||1|| (चतुर्थ अध्याय)

सचेतनो स्म्युक्तो भगवता योजयामृतमंथनम् |

एतदुत्साहजननं सुरप्रीतिकरः तथा ||2||

अर्थ-रंगपीठ के मध्य में पुष्पमालाओं से सज्जित जल से पूर्ण कुम्भ स्थापित करना चाहिए और उसके भीतर स्वर्ण डालना चाहिए ||72||

इस प्रकार पूजन करके मैंने ब्रहमा से कहा– " हे वैभवशाली, शीघ्र आज्ञा प्रदान करें कि कौन सा नाटक खेला जाय ||1||" तब भगवान ब्रहमा के द्वारा मुझसे कहा गया– "अमृत-मंथन का अभिनय करो | यह उत्साह बढ़ाने वाला तथा देवताओं के लिए प्रीतिकर है ||2||"

–भरत का नाट्यशात्र, पृ.58 तथा 64

वह नाट्य-प्रकार 'समवकार' कहलाता था और भरत द्वारा उसका अभिनय धर्म और अर्थ को सिद्ध करने वाला माना गया है | देवताओं के साथ शंकर की अभ्यर्थना भी की गयी | 'अमृत-मंथन' में इस प्रकार ब्रहम-विष्णु-महेश की एकता और देवताओं की प्रसन्नता अभीष्ट रही , जो आज तक चली आ रही है | 'त्रिपुर-दाह' का अभिनय 'अमृत-मंथन' के बाद हुआ, भरत मुनि के इस कथन से 'अमृत-मंथन' की कथा की महत्ता और बढ़ जाती है | नाट्यवेद की रचना जम्बूद्वीप के भरत खण्ड में पंचम वेद के रूप में की गयी क्योंकि शूद्र जाति द्वारा वेद व्यवहार उनके समय निषिद्ध माना जाता था | यह पांचवा वेद सब वर्णों के लिए रचा गया क्योंकि भरत शूद्र जाति को भी अधिकार सम्पन्न बनाना चाहते थे, साथ ही अन्य वर्णों का भी उन्हें ध्यान था | 'सार्ववर्णिकम' शब्द इसलिए महत्वपूर्ण है | यथा–

न वेदव्यवहारो यं संश्रव्य शूद्रजातिषु |

तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम् ||2|| (प्रथम अध्याय)

कुम्भ का महत्व भी इसी प्रकर सभी वर्णों से समंवित है | किसी वर्ण का गंगा-स्नान अथवा कुम्भ-स्नान में निषेध नहीं हैं |वर्णेतर लोग भी स्नान करते हैं | विष्णु के चरणों से चौथे वर्ण की उत्पत्ति मानी गयी है और गंगा भी विष्णु के चरणों से निकली हैं ऐसी पौराणिक मान्यता है | दोनों का विशेष संबंध सांस्कृतिक दृष्टि से उपकारक एवं प्रेरक सिद्ध होगा | इस प्रकार कुम्भ हर प्रकार के भेदभाव का निषेध करता है |

•

<u>अन्य कुम्भ-स्थलों से प्रयाग की तुलनात्मक महत्ता</u>

'कुम्भ' का समारम्भ कब और क्यों हुआ तथा उसे चार ही स्थानों तक सीमित क्यों माना गया, इन अति-प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर अभी तक नहीं मिल पाया है, पर जो चेष्टाएं इस दिशा में की गयी है वे निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं | भारतीय दृष्टि ने 'इतिहास पुराणाभ्याम' कह कर इतिहास और पुराण में भेद नहीं माना परंतु आधुनिक युग में इतिहास पुराण से अधिक मान्य हो गया है | कहीं-कहीं वह पुराण-विरोधी भी दिखायी देता है | विदेशी काल-दृष्टि सीधी रेखा का अनुसरण करती है किंतु भारतीय काल-दृष्टि आवर्तन मूलक है | उसमें लयात्मकता है जो भारतीय संस्कृति के लीलापरक दृष्टिकोण से संगति रखती है और भक्ति-भाव से भी सम्पृक्त सिद्ध होती है |

कृष्णभक्तयात्मक तत्वं लयः सर्व सुखावहः |

लीला-तत्व श्रीमदभागवत का सार है और उसे दर्शन और व्यवहार दोनों का बल मिला है | भक्ति के प्रायः सभी सम्प्रदायों ने लीला-तत्व के साथ लय-प्रलय को आनन्दात्मक माना है तथा उसे विराट रूप में देखकर सृष्टिव्यापी कल्पना की है जो किसी काल में समाप्त नहीं होती और नअपनी महत्ता खोती है | प्रयागस्थ वट-वृक्ष इसी अडिग आस्था का प्रतीक है |प्रलय के बाद भी उसके पत्ते पर लीलामय कृष्ण का दर्शन बाल-रूप में होता है ऐसी भावना लोक-ग्राह्य है तथा कवि-प्रेरक भी | यथा–

करारविंदेनपदारविन्दं,
मुखारविन्दे विनिवेशयंतम् |
वटस्यपत्रस्यपुटे शयानं,
बालमुकुंदं शिरसा स्मरामि ||

किसी भी अन्य कुम्भ-स्थल में आस्था का ऐसा विशाल,आकाशव्यापी,अनन्त विराट-वृक्ष जो निरंतर प्रेरणाप्रद हो,दिखायी नहीं देता और न गंगा-यमुना जैसी प्रत्यक्ष तथा सरस्वती रूपी परोक्ष नदी की कल्पना की गयी है | त्रिवेणी मृत और अमृत दोनों तत्वों के समीकरण से उत्पन्न ऐसी धारणा है जो मृत्यु पर मानसिक रूप से विजय प्राप्त करके जीवन में व्याप्त अमृत-तत्व को सर्वसुलभ बनाने का संकल्प करती है |इसमें इतिहास और पुराण दोनों सहायक होते हैं कोई किसी का निषेध या विरोध नहीं करता क्योंकि उसकी धार्मिक दृष्टि मूलतः सांस्कृतिक दृष्टि है | आज विज्ञान भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की भौतिक प्रक्रिया खोज रहा है और मृत्यु को एक रोग के रूप में देखने का साहस कर रहा है | भारतवर्ष ने आत्मा पर आस्था करके माअनसिक रूप में मृत्यु पर विजय

प्राप्त करने का व्ज्ञान रच दिया था | 'ग्यानिहुं ते अति बड़ बिग्यानी' की धारणा व्यक्त करके भारत ने ज्ञान के ऊपर विज्ञान को माना है |अब विज्ञान का अर्थ ही छोटा हो गया है |

•

कुम्भ सम्बंधी तीन कथाएं

श्री गोपालदत्त शास्त्री महाराज जो रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य हैं, ने एक लघु पुस्तिका तीर्थराज प्रयाग कुम्भ महात्म्य नाम लिखी है; जिसमें कुम्भ पर्व की प्रचलित तीन कथाएं शीर्षक से जिन कथाओं का उल्लेख किया गया है उनमें सर्वोपरि महत्ता समुद्र-मंथन से सम्बद्ध कथा को मिली है पर अन्य कथाएं भी उपेक्षणीय नहीं लगतीं | क्रम यह दिया गया है |

द्रष्टव्य पृ.11 से 14

1-महर्षि दुर्वासा की कथा
2-कद्रू-विनता की कथा
3-समुद्र-मंथन की कथा

पहली कथा इंद्र से सम्बद्ध है जिसमें दुर्वासा द्वारा दी गयी दिव्य माला का असहनीय अपमान हुआ | इंद्र ने उस माला को ऐरावत के मस्तक पर रख दिया और ऐरावत ने उसे खींच कर पैरों से कुचल दिया | दुर्वासा ने फलतः भयंकर शाप दिया जिसके कारण सारे संसार में हाहाकार मच गया | अनावृष्टि और दुर्भिक्ष से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी | नारायण की कृपा से समुद्र-मंथन की प्रक्रिया द्वारा लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ जिससे वृष्टि होने लगी और कृषक-वर्ग का कष्ट कट गया | अमृत-पान से वंचित असुरों ने कुम्भ को नागलोक में छिपा दिया जहाँ से गरुड़ ने उसका उद्धार किया और उसी संदर्भ में क्षीरसागर तक पहुँचने से पूर्व जिन स्थानों पर उन्होंने कलश को रक्खा,वे ही कुम्भ-स्थलों के रूप में प्रसिद्ध हुए |

दूसरी कथा प्रजापति कश्यप की दो पत्नियों के सौतियाडाह से सम्बद्ध है |विवाद इस बात पर हुआ कि सूर्य के अश्व काले हैं या सफेद | जिसकी बात झूठ निकलेगी वही दासी बन जायेगी | कद्रू के पुत्र थे नागराज वासुकि और विनता के पुत्र थे वैनतेय गरुड़ | कद्रू ने अपने नागवंश को प्ररित कर्क्र उनके कालेपन से सूर्य के अश्वों को ढक दिया फलतः विनता हार गयी | दासी के रूप में अपने को असहय संकट से छुड़ाने के लिए विंता ने अपने पुत्र गरुड़ से कहा तो उन्होंने पूछा ऐसा कैसे हो सकता है | कद्रू ने शर्त रक्खी कि नागलोक से वासुकि-रक्षित अमृत-कुम्भ जब भी कोई ला देगा मैं तुम्हें दासत्व से मुक्ति दे दूंगी |विनता ने अपने पुत्र को यह दायित्व सौंपा जिसमें वे सफल हुए | गरुड़ उस अमृत-

कलश को लेकर भूलोक होते हुए अपने पिता कश्यप मुनि के उत्तराखण्ड में गंधमादन पर्वत पर स्थित आश्रम के लिए चल पड़े | उधर वासुकि ने इंद्र को सूचना दे दी | इंद्र ने गरुड़ पर चार बार आक्रमण किया और चारों प्रसिद्ध स्थानों पर कुम्भ का अमृत छलका जिससे कुम्भ-पर्व की धारणा उत्पन्न हुई |

देवासुर संग्राम की जगह इस कथा में गरुड़-नाग संघर्ष प्रमुख हो गया | जयंत की जगह इंद्र स्वयं सामने आ गये | यह कहना कठिन है कि कौन सी कथा अधिक विश्वसनीय और लोकप्रिय है पर व्यापक रूप से अमृत-मंथन की उस कथा को अधिक महत्व दिया जाता है जिसमें स्वयं विष्णु मोहिनी रूप धारण करके असुरों को छल से पराजित करते हैं | सपत्नी-भाव की लोकप्रियता भी कम नहीं कही जा सकती और गरुड़ का संदर्भ भी अनुपेक्षणीय है परंतु कुल मिलाकर विशेष प्रसिद्धि समुद्र-मंथन की कथा को ही मिली | दुर्वासा की कथा में भी समुद्र-मंथन का प्रसंग समाहित है | इसलिए भी उसका महत्व बढ़ जाता है | कश्यप की संततियों का पारस्परिक युद्ध देवासुर-संग्राम जैसा प्रभावी रूप ग्रहण नहीं कर सका यद्यपि उसकी प्राचीनता संदिग्ध नहीं है | गरुड़ की महत्ता विष्णु से जुड़ गयी है और वासुकि रूप में नागों का सम्बंध शिव से अधिक माना गया | यहाँ भी शैव-वैष्णव भाव देखा जा सकता है जो बड़े द्वन्द्वात्मक संघर्ष के बाद अंततः हरिहरात्मक ऐक्य ग्रहण कर लेता है |

•

समुद्र-मंथन का प्रतीकार्थ और अमृत-कुम्भ

समुद्र-मंथन एक ऐसी कथा है जिसके पौराणिक रूप के भीतर जीवन का रहस्य निहित है | उसे सृष्टि-कथा से भिन्न दार्शनिक स्तर पर तत्व कथा कहा जा सकता है |सहस्त्रों वर्ष के सुदीर्घ अनुभव को अद्भुत प्रतीकात्मक भाषा प्रदान की गयी है |उसमें मनोगत यथार्थ का शाश्वत रूप भी प्रतिबिम्बित हुआ है |यह कथा महाभारत के अंतर्गत अध्याय सत्रह और अट्ठारह में दी गयी है तथा अनेक पुराण-ग्रंथों में भी वर्णित है |पुराणों की तुलना में महाभारत ने इसके निहितार्थ को आध्यात्मिक रूप दे दिया है |प्रसिद्ध पुराविद तथा महान संस्कृति-चिंतक डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने उसकी जैसी व्याख्या की है वह और भी मननीय प्रतीत होती है | उन्होंने ‘कलशोदधि’ को काव्यात्मक मान कर कलश रूपी उदधि की कल्पना की है और उसे मानव-शरीर पर घटित किया है | मंथन की प्रक्रिया को देवासुर-संघर्ष के पौराणिक अर्थ से भिन्न किंतु उसी से निष्पन्न मनोगत ‘आत्ममंथन’ कहा है |कथा में स्वयं

समुद्र ने अमृतांश माँगा तभी उसने मंदर-भ्रमण की पीड़ा के लिए अपने को प्रस्तुत किया | मंदराचल को सुदृढ़ को आधार पर प्रतिष्ठित करनेके लिए विष्णु ने कूर्मावतार लिया | महामंथन के कारण कश्यप,कच्छप अथवा कछुवे की पीठ पर 'किण-चक्र' बन गया जिसको जयदेव के 'गीतगोविंद' में और तुलसी की 'कवितावली' में घट्टा पर्यो मंदर को के रूप में याद किया गया है | सर्पराज वासुकि नेती या नेत्र-सूत्र बने | असुर मुख की ओर और देवता वासुकि की पूंछ की ओर लग गये |संघर्ष से उपजी अग्नि को इंद्र ने वर्षा करके शांत किया | संघर्षण से उपजा औषधियों का रस, अमृत-वीर्य के रूप में क्षार-समुद्र को क्षीर-सागर बना गया | कलशोदधि से सबसे पहले सोम उत्पन्न हुआ फिर अन्य रत्न |

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल की धारणा है कि समुद्र-मंथन का यह उपाख्यान आध्यात्मिक पक्ष में मनुष्य की दैवी और आसुरी वृत्तियों के संघर्ष का विवेचन करता है |मनुष्य का मन उसकी सर्वश्रेष्ठ निधि है | शरीर का भाग पार्थिव है थथा मन का भाग स्वर्गीय या दैवी अंश | शरीर सम्बंध नश्वर है पर मन कल्पांत-स्थायी |जिस किसी क्षेत्र में देखें मन की शक्ति शरीर की अपेक्षा बहुत विशिष्ट पायी जाती है | प्रमाण सहित उन्होंने बताया कि मनुष्य का एक नाम समुद्र भी है–

पुरुषो वै समुद्रः ||

जैमिनी का यह कथन (उप.ब्राहम 3/3/5/5/) समुद्र-मंथन को नया अर्थ देने में सर्वथा सक्षम है | 'चद्रमा मनसो जातः' तो सुविदित है ही | चंद्र को सुधाकर कहा जाता है मानो वही अमृत-कुम्भ है | कृष्ण-पक्ष चंद्रमा की मृत्यु को द्योतित करता है | शुक्ल-पक्ष उसके पुनर्जीवित होने का अर्थ देता है |

सम प्रकाश-तम पाख दुहुँ ,
नाम-भेद विधि कीन्हि |
ससि-सोसक पोसक निरखि,
जग जस-अपजस दीन्ह ||

–रामचरित मानस,बालकांड,वंदना-प्रसंग

वस्तुतः चंद्रमा मरता नहीं उसकी कला अलक्षित हो जाती है | इसीलिये अमावस को ही प्रयाग में कुम्भपर्व लगता है | सोमवती होने से उसका महत्व और बढ़ जाता है क्योंकि चंद्रमा स्वयं सोम का स्वरूप एवं पर्याय है प्रतिपदा या प्रथमा को 'अमृतांश-कला' माना जाता है | अंधेरे और उजाले पाख को देवासुर-संग्राम के रूप में देखें तो जीवन सर्वत्र अमृतमय दिखायी देगा | 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का प्रार्थी मानव-जीवन भी मूलतः अमृतमय

है | प्रतीक के भीतर प्रतीक झलकते हैं| इसी में पुराण-कथाओं की काव्यात्मकता प्रकट होती है |

•

समुद्र-मंथन की कथा : पौराणिक पृष्ठभूमि

पौराणिक पृष्ठभूमि में सबसे ऊपर स्थान मिला है देवासुर-संघर्ष को जिसका रूप समुद्र-मंथन की कथा से स्पष्ट हो जाता है |ऐसी ललित और अर्थपूर्ण कथा भारतीय साहित्य में दूसरी नहीं है क्योंकि देवता और असुरों की प्रवृत्ति का जितना गहरा परिचय इससे मिलता है उतना किसी और कथा से नहीं | एक प्रकार से जीवन की धारक और मारक दोनों वृत्तियों का इसमें पूरा निरुपण मिल जाता है |समुद्र-मंथन से जो रत्न निकले उनकी संख्या चौदह बतायी जाती है | राष्ट्रकवि ने उन रत्नों की उत्पत्ति का अनुक्रम जिसप्रकार प्रदर्शित किया है वह मुझे अभी तक स्मरण है:-निकले चौदह रत्न, प्रथम सुरभी कल्याणी |तब रम्भा छविमती, चंद्र शीतल सुखकारी |घातक विष,प्रिय शंख, बाजि,गज,धनु मणि प्यारी |इनके पीछे प्रकट हुई श्री शोभा-सीमा | रूप-भार से दबा, गमन था जिनका धीमा |तब प्रकटे सित-वसन वैद्य,धंवंतरि ज्ञानी | लिये सुधा का पात्र, जिलाने को मृत प्राणी | मंथन का उपकरण जहाँ का तहाँ पठाया| फिर दोनों ने भाग-प्राप्ति का प्रश्न उठाया | पर दोनों दल हुए विकल, लख विष की ज्वाला |उनके हित के लिए उसे शिव ने पी डाला | श्री हरि को वरा, योग्य वर उनको लेखा |पर दैत्यों की ओर न भूले से ही देखा |

कुम्भ अथवा अमृत-घट किसको मिले यह निश्चय नहीं हो सका | धंवंतरि ने उसे देवताओं को दे दिया तो दैत्य क्रुद्ध हो उठे | पुनः देवासुर संग्रामकी स्थिति आ गयी | दोनों ओर खींच-तानी शुरू हुई | संकट का अनुमान करके विष्णु भगवान ने एक योजना बनायी जिसमें स्वयं 'मोहिनी' रूप धारण करके सबको अमृतपान के लिए तत्पर पंक्तिबद्ध होकर बैठ गये | वितरण के लिए अपने को प्रस्तुत करने के पहले मोहनीरूपी विष्णु ने इंद्र-पुत्र जयांत को अमृत-कलश धारण करने का भार दिया | और उसकी रक्षा का दायित्व नवग्रहों में से सूर्य, चंद्र, बृहस्पति और शनि को दिया | कलश न टूटे, न फूटे यह कार्य सूर्य को दिया गया | अमृत न छलके, न बहे यह दायित्व चंद्रमा को मिला | राक्षसों से अमृत-कुम्भ सुरक्षित रहे इसका भार देव-गुरु बृहस्पति को प्रदान किया गया | शनि का कार्य यही रहा कि वह घटवही जयंत की देखभाल करें | इन्हीं चारों ग्रहों से चार स्थानों पर होने वाले कुम्भ-पर्व की कथा जुड़ी है | राक्षसों से कलश की रक्षा करने के लिए ही जयंत को नासिक, उज्जैन, हरिद्वार और प्रयाग में चतुर्दिक भागकर जाना पड़ा | प्रयाग इन सबसे

अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ |जहाँ-जहाँ अमृत-कलश छलका वहीं-वहीं अमृततत्व की कामना करने वाले सुधी तत्वज्ञ एकत्र होने लगे और उसी धार्मिक उत्सव ने कालांतर में मेले का रूप ग्रहण कर लिया | उक्त स्थानों पर कुम्भ सूर्य, चंद्र और बृहस्पति की सिंह, कुम्भ और मेष राशियों की स्थिति से निर्धारित होता है |यह मान्यता हजारों वर्ष से चली आ रही है |

उस समय राहु-केतु विभाजित नहीं थे | मंगल और बुध को कनिष्ठ मानकर अलग ही रक्खा गया | शुक्र दैत्यों के पुरोहित माने गये हैं | अतः उन्हें भी रक्षा का भार नहीं दिया गया | नव-ग्रहों की प्रतीक-कथा ही कुम्भ की कथा बन गयी | शुभ-अशुभ ग्रह अमृत और विष के प्रभाव के द्योतक हो गये | जिन्हें रक्षा का भार दिया गया उनमें भी दोनों प्रकार के ग्रह थे | शनि की दृष्टि कठोर थी | कदाचित उसी ने कलश को स्थिर नहीं रहने दिया |

•

कुम्भ-मेला : संसार का सबसे बड़ा मेला

कुम्भ-मेलों के परिविस्तार और उत्तरोत्तर सघन होते हुए जन-समूह की कल्पना से यह स्पष्ट है कि कुम्भ मेले संसार के सबसे बड़े मेले होते हैं और उनमें प्रयाग-कुम्भ का अपना विशिष्ट स्थान है |जिसने स्वयं देखा नहीं है वह उसका अनुमान नहीं लगा सकता| कितने सम्प्रदाय,कितने अखाड़े,कितने मठ-मठाधीश, विभिन्न वेशों और मुद्राओं में आये कितने साधु-संत और देश-विदेश से आये कितने स्नानर्थी एवं दर्शनार्थी सारे नगर को एक जीवंत लघु भारत बना देते हैं |जिसकी विराटता स्वयंसिद्ध दिखायी देती है |सारे तीर्थों, सारी नदियों और सारे जलाशयों का आशय कुम्भ में सिमट कए उसे महाकुम्भ बना देता है | जलधारा और जनधारा का इतना विशाल संगम किसे अंतर्स्नान नहीं कराता और मानसिक-मुक्ति नहीं देता |जिसकी जन-भावना इसके साथ नहीं जुड़ी वह वस्तुतः देश के साथ एकात्म नहीं हो सकता |जिसे इसको देखकर प्रसन्नता नहीं होती वह सचमुच प्रसाद का अधिकारी नहीं है क्योंकि प्रसाद की सार्थकता ही इसी में है कि देने वाले और लेने वाले के बीच आस्था का समान सूत्र बना रहे | अन्य धर्मों में विश्वास रखने वाले भी इस बात से अवश्य प्रसन्न होंगे कि भारतवर्ष मूलतः आस्थाशील लोगों का देश है | शिवत्व के प्रति आस्था ही हिंदुत्व की सबसे बड़ी पहचान है | उदारता, सहनशीलता तथा सौंदर्यप्रियता उसकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावना के अभिन्न अंग रहे हैं | नये मनुष्य की कल्पना और उसके प्रतिमूर्ति होने की सारी संभावनाएं इसी अहिंसक देश में दिखायी देती है |अन्य देश युद्धों की विभीषिका से इतने आक्रांत रहे हैं कि तटस्थ दृष्टि से जीवन को देखना उनके लिए दुष्कर हो गया है | वैसे

मनुष्यता स्वयं खंडित नहीं हुई है अतः कोई भी देश इसका श्रेय ले सकता है |धर्म का अर्थ भारतवर्ष में सदा मानव-धर्म माना गया है इस्लिए धर्मनिरपेक्षता उसे प्रेरक और आत्मीय नहीं लगती परंतु जब तथाकथित 'धर्म' मानवता से विपथ होने लगते हैं तो धर्मनिरपेक्षता ही सच्चा धर्म बन जाती है |

'हरिहर-क्षेत्र' की तरह कुम्भ मेले में मीना बाज़ार, घोड़ा बाज़ार, हाथी बाज़ार, चिड़िया बाज़ार और काठ बाज़ार नहीं लगते और न संगीत-नृत्य के लिए वारांगनाएं सुलभ होती हैं |लीलाओं का प्रदर्शन अवश्य होता है | गीता-भागवत की कथा का ललित रूप भी सुन्ने में आता है |भजन-कीर्तन के जीवंत वातावरण में स्त्री-पुरुष समान भाव से सहयोग देते हैं | कुम्भ मेले की प्रकृति मूलतः दूसरे मेलों से भिन्न है | किसी पशु मेले से तो उसकी तुलना कदापि नहीं की जा सकती देश में धार्मिक मेलों की एक बहुत बड़ी श्रृखला है,यह मेला उसका सर्वोच्च शिखर कहा जा सकता है |आज की व्यापारिक मानसिकता ने उसे प्रभावित अवश्य किया है परंतु मूल-भावना अभी तक जीवंत जाग्रत है |कुस-काँस,तम्बू-कनात, नौका जहाज, गंगाजली-जनेऊ, मुडन-तर्पण, हड्डी-पिंडा, स्नान-गोदान सब गंगा मैया के भरोसे होता रहा है | यहाँ के व्यापार में भी धर्मभाव कुछ न कुछ रहता ही है |

भागीरथी हम दोस-भरे,

पै भरोस यहै, हैं परोस तिहारे ||

ऐसा न हो इतने लोग इतनी कठिनाइयों को सहते हुए भी बिना निमंत्रण एकत्र नहीं हो पाते |तर्क श्रद्धा और विश्वास को काटना नहीं उन्हें दृढ़ भी करता है, यह बात अनुभव से ही जानी जाती है |

यो यत् श्रद्धा स एव सः"

•

कुम्भ-पर्व का ज्योतिषपरक पक्ष

ज्योतिष शब्द स्वयं अंधकार पर ज्योति की विजय का द्योतक है | प्रकाश से कौन विमुख रहना चाहेगा परंतु मनुष्य की सहन-शक्ति सीमित है | एक सीमा के बाद प्रकाश की तीव्रता मनुष्य को अंधा कर सकती है | मैंने कहीं लिखा था–

अपने परिवेश की परिज्ञा से वंचित को

छलती है ज्योति भी |

कभी-कभी यह भी अनुभव होता है–

एक-एक सुख-रश्मि को घेरे अमित विषाद हैं |

नियम तिमिर ही है सदा,

रवि-शशि सब अपवाद हैं |

मनुष्य को त्रिकालज्ञता सुलभ नहीं है पर यदि उसे आगे-पीछे का पूरा ज्ञान हो जाये तो क्याअ वह अपने स्वरूप में स्थिर रह सकेगा ? यह प्रश्न गंभीर रूप से उठता है किंतु ज्योति के बिना भी काम नहीं चलता |आत्मा को मूलतः प्रकाश-स्वरूप माना गया है और अनुभव भी ऐसा ही होता है | आत्मज्ञान से ही सारा ज्ञान आरम्भ होता है पर वही गौण हो जाता है | बिहारी का दोहा अत्यंत मार्मिक है:–

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जाने नाहिं |

ज्यों आंखिन सब देखिये, आंखि न देखी जाहिं ||

जब ज्योतिष-ज्ञान अंतर्दृष्टि बनकर आता है तो वह ग्राह्य और प्रेरक होता है पर जब लोभ से जुड़ जाता है तो ज्ञान अज्ञान बनने लगता है | लोग उससे बचने लगते हैं | यह बात फलित-पक्ष पर विशेषतः लागू होती है |

ज्योतिष का गणित पक्ष मेरुदण्ड के रूप में उसे सुदृढ़ आधार दिये रहता है तथा वैज्ञानिक दृष्टि से वह ग्राह्य माना जाता है | ज्योतिष के आधार से ही पर्वों का निश्चय होता है और एक विश्वास के साथ बिना बुलाये इतने लोग विभिन्न क्षेत्रों से एक ही स्थान पर एकत्र होजाते हैं |कुम्भ पर्व का ज्योतिष परक पक्ष इसीलिए विशेष महत्वपूर्ण है | वह आकाश पिण्डों में व्याप्त विराट लयात्मकता से जुड़ जाता है |

'कुम्भ' शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों पर अन्यत्र विचार किया गया है पर उसका एक अर्थ ज्योतिष से सीधे सम्बद्ध रहा है अतः उसी ज्योतिष मूलक संदर्भ को यहाँ उठाया जा रहा है |

आकाश को सही पहचाअन के लिए बहुत काल से 27 नक्षत्रों तथा 12 राशियों में विभाजित किया जाता है | कुम्भ राशि 11 वीं राशि है | उसी से कुम्भ-पर्व का नामकरण हुआ है | पौराणिक कथा जिसमें समुद्र-मंथन के साथ अमृत कुम्भ का प्रसंग जुड़ा है सर्वथा भिन्न है | आगे चलकर दोनों सम्बद्ध हो गये यह बात दूसरी है |

कुम्भ राशि में बृहस्पति होने से कुम्भकेवल हरिद्वार में माना जाता है अन्यत्र वृष और सिंह आदि विभिन्न राशियों का विचार रहता है और ग्रह भी बदल जाते हैं | विष्णुयोग में गंगाद्वार(हरिद्वार) के कुम्भ का निरुपण इस प्रकार किया गया है–

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भ राशिगतो गुरुः |

गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भंनामा तदोत्तमः ||

मेष में सूर्य और कुम्भ में बृहस्पति हो तो कुम्भ नाम उत्तम योग वहीं बनता है |हरिद्वार से कुम्भ का अरम्भ हुआ हो यह बात विचार संगत लगती है |'कुम्भ नगर हरिद्वार' के लेखक कमलकांत बुधकर ने इसकी ओर ध्यान दिलाया है : **"कुम्भ तो वस्तुतः हरिद्वार में ही होता है और सम्भवतः यहीं से यह परम्परा आरम्भ हुई होगी क्योकि शेष तीन स्थलों पर बृहस्पति कुम्भस्थ होता ही नहीं है |तात्पर्य यह कि कुम्भ विशेषण इस महापर्व के लिए हरिद्वार के साथ जुड़कर ही अधिक सटीक बैठता है |"**

(उ.प्र.मासिक पत्रिका पृ.28, सूचना विभाग)

महाभारत में कद्रू-विनता के सपत्नीक-संघर्ष से अमृत-कुम्भ की कथा वर्णित है | गरुड़ स्वयं अमृत-कलश लेकर भागते हैं क्योंकि सर्प उनके पीछे पड़ जाते हैं |कुशों पर गिरी अमृत बूँदों को चाटने से सापों की जीभ कट कर दो हो गयी यह ललित उसी कथा से जुड़ी है |स्कंदपुराण में भी कहा गया है- **"कलशोन्यपतत्तत्र कुम्भ-पर्व तदुच्यते |"**

पौराणिक अमृत-कुम्भ की कथाएं कहाँ से आरम्भ हुई इसका निश्चय अभी तक हुआ नहीं है |समुद्र-मंथन वास्तविक घटना है या केवल प्रतीकात्मक रूप से मानव-मन का द्वंद्व निरुपित करती है यह भी निश्चित नहीं है | अमृत-कुम्भ जिन धंवंतरि के द्वारा प्राप्त हुआ वे विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे या कोई पूर्व-पुरुष यह भी निर्धारित नहीं हुआ है | नासिक समुद्र तट के निकट के निकट अवश्य है पर वहां और उज्जैन दोनों स्थानों पर कुम्भ सिंहस्थ मानाजाताहै कुम्भस्थ नहीं | प्रयाग में कुम्भ की परम्परा हरिद्वार से गंगाजल के साथ बहती हुई आयी या अक्षयवट और गंगा-यमुना के संगम पर ब्रहमा की प्रदान यज्ञवेदी होने के कारण स्वतः उद्भूत हुई यह भी विचारणीय है |कुम्भ के समस्त स्थलों में तीर्थराज प्रयाग सर्वोपरि महत्ता रखता है इसमें संदेह नहीं पर कुम्भ पहले-पहल यहीं से आरम्भ हुआ ऐसा निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है |जहाँ भी कुम्भ का उल्लेख एवं वर्णन मिलता है,कहीं भी उसके क्रम का निर्देश नहीं है | मैंने पर्याप्त श्रम किया पर मुझे भी विश्वसनीय आधार नहीं मिला कि तय कर सकूँ, कुम्भ कहाँ से आरम्भ हुआ | अनादि-अनंत सृष्टि की चक्रात्मकता में सब कुछ विलीन हो जाताअ है | पृथ्वी की तरह उसका उद्धार करना वारहावतार लेने से ही संभव है पर अब कौन उस रूप को धारण करना चाहेगा |

कुम्भ राशि मकर राशि के पूर्व और उत्तर में स्थित है |जल केतु मंडल और मीन मंडल के बीच कुम्भ राशि के तारे रहते हैं इसीलिए कुम्भ राशि जल से सम्बद्ध मानी गयी है |आधुनिक खगोल विज्ञान में भी उसे महत्वपूर्ण माना गया है |

तथा सभी जगह उसे भाग्यशाली बताया गया है |कुम्भ मंडल का विदेशी नाम 'एक्वेरियम' है |सूर्य जब कुम्भ राशि में पहुँचता है तो असाधारण वर्षा का योग होता है | कुम्भ के आस मकर, सेतस(ह्वेल), शिंशुमार (सूँस,-डालफिन), मीन,दक्षिण मीन आदि मंडलों का नाम जलीय प्राणियों के आधार पर पड़ा है |बेबीलोनिया में कुम्भ की कल्पना जार से जल उड़ेलते बालक के रूप में की गयी है पर भारतीय कल्पना में नारी को कलश-संयुक्त माना गया है | कुम्भ से गिरने वाली धार दक्षिण मीन तक पहुँचती है | फोमलहौत अरबी नाम है जो मछली के मुँह का द्योतक है | इसके लिए कोई भारतीय नाम नहीं है | कुम्भ मंडल में एक अद्भुत ग्रहीय नीहारिका भी देखी गयी है | चमकती हुई ऐसी गैसीय नीहारीका 'प्लेटरो नेवुला' कहलातीहै | इसकी दूरी 600 प्रकाश वर्ष से भी अधिक मानी गयी है |कुम्भ मंडल तारा-गुच्छ भी है जिसकी दूरी और भी अधिक है |लांबड़-कुम्भ तारे का प्राचीन भारतीयों ने शतभिषक नाम दिया था | 27 नक्षत्रों में उसकी गणना वैदिक काल से होती रही |

सामान्यतया माना जाता है कि ज्योतिष मूलरूप से भविष्य की तलाश है और विज्ञान अतीत और वर्तमान की खोज करता है | इतिहास इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति अपना रहा है और विज्ञान ऐसे नियमों की खोज में लगा है जिससे भविष्य को भी जाना जा सके | देश-काल की सीमाओं से जो नियम नहीं बँधते वे भारतीय शब्दावली में 'ऋत' कहे जाते हैं | सत्य का साक्षात्कारकेवल ऋत से नहीं होता उसके लिए सत्य को मानवीय बनाना पड़ता है | ज्योतिष बीज की भाषा बन कर सामने आती है | ग्रहों का विशेष योग अभीष्ट फल देगा यह विश्वास अभी तक टूटा नहीं है भले ही 'अष्टग्रहों' की भयकारी भविष्यवाणीयाँ निरर्थक हुई हों | जन्म - कुंडली जीवन के मूल रूप को रेखांकित कर देती है यह बात भी मानी जाती है |ज्ञान की अपूर्णता विधि मात्र में अविश्वास उतपन्न नहीं करती वरन् ज्ञान को अधिक सूक्ष्म और प्रभावी बनाने की ओर प्रवृत करती है |इन्हीं सबसे प्रेरित होकर भारतीय जन-मानस में तीर्थों, स्नान-पर्वों तथा अनुष्ठानों एवं उत्सवों का अयोजन स्वाभाविक रूप से होता रहा है | यदि सहसा उन्हें बंद कर दिया जाय तो कितनी रिक्तता अनुभव होगी इसका अनुमान नहीं कियाजा सकता है |नदी की धारा से अधिक प्रखर धारा मन में समायी रहती है जिसका निषेध किसी प्रकार नहीं किया जा सकता | **"ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात कुरुर्तेर्जुन"** कहने वाले श्रीकृष्ण भी अपने जीवन में वैसा नहीं कर सके | बीज वृक्ष का सम्बंध निरंतरता और अनंतता से जुड़ा है |उसे निःशेष नहीं किया जा सकता | शेष को विष्णु और शिव दोनों को मान्यता देते हैं और ब्रह्मा इन दोनों को

मान्यता देते हैं | फलतः शेष बदल कर विशेष हो जाता है | प्रयाग का कुम्भ कई कारणोंसे विशेष महत्व रखता है | गंगा-यमुना जैसी नदियाँ देश के हृदय स्थल पर एकात्म भाव से संपूजित रहीं हैं | यह विशेषता अक्षयवट द्वारा और भी गरिमापूर्ण हो जाती है | सरस्वती का मनोमय आविर्भाव त्रिवेणी की सृष्टि करता है |परोक्ष और प्रत्यक्ष का मिलन गंगा-यमुना के मिलन से कम दिखायी नहीं देता | महर्षि भरद्वाज और रामायणकार वाल्मीकि दोनों का आशीर्वाद इस क्षेत्र को प्राप्त हुआ है |देश का स्वस्तिक प्रयाग में केंद्रित होकर चतुर्दिक शक्ति संतुलन बनाये रहा है, आगे भी वही कार्य कर सकेगा | प्रयाग सांस्कृतिक केंद्र तो निरंतर बना रहा है | इस दृष्टि से दूसरा स्थानअवंतिका या उज्जैन का है |हरिद्वार और प्रयाग गंगा तट पर बसे अतः कुम्भ स्नान अन्यत्र भी गंगा स्नान जैसा पवित्र माना जाता है | यह दोनों स्थान कुम्भ को उत्तर भारतीय मानसिकता देतेहैं पर दक्षिण में भी कुम्भकोणम कुम्भ की परम्परा को देशव्यापी सिद्धकर देता है | इसे अलग निरूपित किया गया है | नीचे चारों स्थलों के ज्योतिष मूलक संदर्भ दिये जा रहे हैं जो द्वादश वर्षीय क्रम से आते रहते हैं | 11 कुम्भों के बाद आने वाला कुम्भ, महा कुम्भ माना जाता है | बृहस्पति ही 11 वर्ष 11 महीने और 27 दिन में अपना राशि चक्र पूरा करता है अतः उसी के कारण कुम्भका निश्चय 11 से 12 वर्ष के भीतर किया जाता है |

1- प्रयाग-ग्रह योग-मेष राशि में बृहस्पति, चंद्रमा और सूर्य दोनों मकर राशि में,संगम तट पर अक्षयवट के समीप विख्यात कुम्भ स्नान |
2- उज्जैन -ग्रह योग- सिंह राशि में बृहस्पति, मेष राशि में सूर्य, शिप्रा तट पर पर्व-स्नान, सिंहस्थ नाम से प्रसिद्ध |
3- हरिद्वार- ग्रह योग- कुम्भ राशि में बृहस्पति, मेष राशि में सूर्य, गंगा तट पर पर्व-स्नान, कुम्भ नाम से विख्यात |
4- नासिक - ग्रह योग- सिंह राशि में बृहस्पति, सिंह राशि में ही सूर्य, गोदावरी तट पर पर्व-स्नान सिंहस्थ नाम से प्रसिद्ध |

सूर्य के साथ चंद्रमा का भी विचार किया जा ता है पर वह उसके साथ सदा रहे यह आवश्यक नहीं होता | चारों स्थानों पर बृहस्पति और सूर्य का विचार प्रधान सिद्ध होता है |प्रयाग में दोनों के साथ चंद्रमा का योग और संक्रान्ति की स्थिति सविशेष मानी जाती है | माघ मास की परम्परा कुम्भ को और गरिमा प्रदान करती है | अर्धकुम्भ प्रयाग के अतिरिक्त केवल

हरिद्वार में होता है इससे यह दोनों स्थान और विशेष हो जाते हैं | उज्जैन और नासिक में कुम्भ को सिंहस्थ कहने की परम्परा है | नासिक में सूर्य-बृहस्पति दोनों सिंह राशि में आ जाते हैं अतः पूरी तराह वही सिंहस्थ कहलाने का अधिकारी है |मिस्र में नील नदी की बाढ़ के प्रमाण से तथा आधुनिक वैज्ञानिक अनुशीलन से सूर्य के भीतर जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं उसका क्रम 12 वर्ष का रहता है| भारतीय ज्योतिषियों को सूर्य के ऐसे परिवर्तन का प्रत्यक्ष ज्ञान न भी रहा हो पर दुर्भिक्षों से उन्होंने भी 12 वर्ष के क्रम को जान लिया था | अतः कुम्भ का प्रति बारह वर्ष में निर्धारण निराधार नहीं है | पुराणों का सम्पादन तथा ज्ञान-सत्रों का विशेष आयोजन भी कुम्भ के अवसर पर होता रहा|

सूर्य-चंद्र आदि नवग्रह जो अब नयी खोज के अनुसार एकादश हो गये हैं प्रकृति,अंतरिक्ष, मनुष्य और इसके अंतर्मन को निरंतर प्रभावित करते हैं इसमें कोई संदेह नहीं |समुद्रीय जल में क्षार का अनुपात मानव रक्त के अनुरूप है और गर्भ-जल भी उसी का समरूप सिद्ध हुआ अतः पारस्परिक सम्बंध अब संदिग्ध नहीं है |केवल उसकी सूक्ष्म गति और उससे निकलने वाले परिणामों का ब्योरा उत्तरोत्तर जटिल होता जा रहा है| कम्पुटर की सहायता से उस जटिलता को भी पार किया जा रहा है | ज्योतिष का भावी रूप और उसका मानव जीवन पर प्रभाव अब अधिक वैज्ञानिकता से निर्दिष्ट होगा| कुम्भ से सम्बद्ध चारों स्थानों को भी नयी खोज कृतार्थ करेगी|इनके भीतर का सम्बंध-सूत्र कैसे उत्पन्न हुआ,ज्योतिष का कौन सा आधार उन्हें मिला जो अन्य स्थानों को प्राप्त नहीं है तथा इतने दिनों तक अमृत की जिज्ञासा किस कारण बनी रही, यह सब नये सिरे से विचारणीय होगा| संस्कृति कैसे दूरवर्ती लोगों को जोड़े रहती है और तमाम आधुनिक ज्ञान का मूल बीज बना रहता है | यही नहीं वह उत्तरोत्तर पल्लवित पुष्पित भी होता रहता है| अवश्य मानसिकता में कुछ अंतर आया है और अंधविश्वास बहुत कुछ छूट रहे हैं पर मेरा मन इन आस्थावान् स्नानार्थियों को जलपूरित घट की तरह मांगलिक मानता है | वे रिक्त घट की तरह अपशकुनी नहीं हैं| जल को अमृत में रूपांतरित कर देने को आतुर श्रृधालु मानसिक रूप से ‘लभते-ज्ञान’ की स्थिति तक पहुँच ही जाते हैं|कम से कम वे विष-कुम्भ की साधना करते तो नहीं ही दिखायी देते हैं| उनका विवेक इतना अवश्य जागृत हो जाता है कि वे अमृत और विष में अंतर करने लगते हैं| जो शिक्षा आज का समाज उन्हें देता है उससे ऊँची शिक्षा उन्हें सत्संग से मिल जाती है | ऐसे व्यक्ति एक दूसरे के निकट आते हैं जिनको बाह्याचार से सही रूप में कभी जाना नहीं जा सकता | तीर्थ अंततः सबको उत्तीर्ण कर देता है,किसी को डुबाता नहीं| व्यवस्था-दोष अथवा अन्य कारण से जो दुर्घटनाएँ घटित हो जाती हैं उन्हेन भी

सह लेने का साहस बटोर कर फिर उसी उत्साह से आगे बढ़ने का धैर्य उन्हें धीरोदात्त नायक बना देता है| धीरता इस देश की पहचान रही है जो अब कम होती जा रही है पर अधीरता आज भी श्लाध्य नहीं मानी जाती| धीरता को कालिदास ने जिस रूप में परिभाषित किया है वह माननीय है– **विकारहेतौ सति विक्रियंते |**

येषां न चेतांसि त एव धीराः |

कुम्भ की भारी भीड़ सभी के धर्य की परीक्षा करा देती है, यह अनुभव से मैं जानता हूँ | भारतीय संदर्भ में ज्योतिष मनुष्यों को कितना सक्रिय बना देती है यह कुम्भों और अन्य पर्वों से ज्ञात होता है| लोगों के मनों को और विचारों को सार्थकता की विश्वसनीय तस्वीर देकर लोकमन को बाँधने का अद्वितीय कार्य इस देश ने किया है | भाषा-भेद, जाति-भेद, वर्ण-भेद, आयु-भेद तथा साधन-भेद से ऊपर उठकर आस्था बलवती बनी रहती है|समाज में जो विघटन दिखायी देता है उसे इसकी संस्कृति बहुत दूर तक पूरा कर देती है |

यद्यपि तुलसीदास के जीवन में कई बार कुम्भ आया होगा पर उन्होंने अपने काव्य का कोई वर्णन नहीं किया| 'मीन की सनीचरी' की तरह उन्होंने उसे महत्व नहीं दिया| मकर स्नान का अवश्य उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है| प्रयाग के स्नानार्थी उसी को कुम्भ की प्रेरणा मान लेते हैं|

माघ मकरगत रवि जब होई|

तीरथपतिहि आव सब कोई ||

* * * * * *

एक बार भरि मकर नहाने |

दिये दान महिसुर सनमाने ||

•

<u>प्रयागस्थ संगम-स्नान का बहु-आयामी संकल्प</u>

किसी पवित्र उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा ही तीर्थ-यात्रा कहलाती है,विशेषतः तब जब किसी पुण्य-स्थल से सम्बद्ध हो | जो पापों को क्षीण करे वही स्थल पुण्य-स्थल माना जाता है और पाप वह जो मन की शान्ति में बाधक हो तथा सामाजिक स्तर पर जो अवांछित एवं

अकल्याणकारी माना जाता हो| तीर्थ मनुष्य के खोए हुए संतुलन को पुनः स्थापित करने में सहायक होते हैं क्योंकि व्यक्ति अपनी सीमा के बाहर जाकर असीम जन-समाज का प्रत्यक्ष अनुभव करता है | एक अंतःप्रक्रिया उसे परिचालित करने लगती है और अंतर्मंथन आरम्भ हो जाता है | यदि ऐसा अनुभव किसी को नहीं होता तो उसका तीर्थाटन व्यर्थ है |ऋषियों तथा संतों ने इस मनोवैज्ञानिक तत्व का साक्षात्कार करके तीर्थों की असाधारण महत्ता स्थापित की तथा उनके अनेक स्वरूप निर्धारित किये जिनमें स्थिति और गति दोनों को समाहित कर लिया गया है |

पर्व-स्नान भारतीय संस्कृति का विशेष परिचायक माना जाता है |क्षेत्रीय एवं स्थानीय संदर्भ के अनुरूप एक मूल संकल्प देश के प्रायः सभी भागों में हजारों वर्षों से प्रचलित रहा है | भारतीय मनीषा ने इसे जितने विशाल रूप में परिकल्पित किया है वह असाधारण और अद्‌वितीय है |शायद ही किसी देश ने दिक् और काल की ऐसी सूक्ष्म तथा इतनी विशद धारणा को एक साथ सम्बद्‌ध करके व्यावहारिक रूप में लोक व्यापी मान्यता दी हो | संकल्प का क्षण प्रत्येक व्यक्ति के साथ सर्वांगीण रूप से जुड़कर उसे आत्मीय बना देता है और मन में पवित्रता का संचार करनेमें समर्थ होता है |देश की विराटता में तथा महाकाल की अनन्त और अकल्पनीय परिधि में क्षण-विशेष को एक बिंदु के रूप में ग्रहण करके जो स्फुरण असंख्य स्नानर्थियों को होता है वह अनुभूति की आस्तिक्ता का प्रमाण है |कहीं किसी क्षण कोई व्यक्ति काल-प्रवाह को जल-प्रवाह के रूप में देखकर उसमें निमज्जित होने का संकल्प कर सकता है |इसी आधार पर उसे मंत्र जैसा रूप दे दिया गया है | यह बात दूसरी है कि अज्ञान और अशिक्षा ने इस प्रक्रिया के वास्तविक अर्थ को ग्रहण करने में कठिनाई उतपन्न कर दी है और अनास्था के कारण भी उसका महत्व तिरोहित हो रहा है | संकल्प करनेऔर कराने वाले की मनोभावना के तात्कालिक स्वार्थ से जुड़ जाने पर अनेक बार स्थिति स्वयं व्यंग्य और विडम्बना बन जाती है| परंतु ऐसा होते हुए भी आस्थामय जन-प्रवाह विमुख नहीं हुआ है वरन् परिमाण और संख्या में उत्तरोत्तर विशाल से विशालतर होता जा रहा है | इस देश की व्यक्ति चेतना समाज भावना की विरोधी कभी नहीं रही | वैदिक काल से भारतवर्ष ऐसा अनुभव करता रहा है :–

सं गच्छ्ध्वं, संवदध्वं,

सं वो मनांसि जानताम् |

भारतीय समाज को समूह या भीड़ के रूप में वही लोग देख सकते हैं जो इसके अंतर्प्रवाह से असंपृक्त रहते हैं |वे संगम-तट पर आकर भी यहाँ की महिमा से अभिभूत होने में संकोच का अनुभव करते हैं | बहुधा विचार भेद उसका कारण बन जाता है और धर्म-भेद भी बहुतों को विमुख बनाता है |पर वस्तुतः जन-धारा में ऐसी अदम्य शक्ति है कि विरोधी होकर भी कोई इसकी महत्ता की उपेक्षा नहीं कर सकता | जितने भी विदेशी भारतवर्ष में आये हैं, यहाँ की आस्तिक्ता और धर्म-भावना की उदात्तता को देखकर अवश्य प्रभावित हुए, साथ ही उन्होंने प्रचलित अंधविश्वासों का भी उल्लेख किया है | उनके कुछ कथन प्रमाण रूप में आगे प्रस्तुत किये गये हैं |

यह संकल्प वैष्णवता के सांस्कृतिक अभ्युत्थान और प्रेरणाप्रद मानवीय रूप से जुड़ा हुआ है | इसमें कोई संकीर्णता और निषेध की भावना नहीं है | जाति-वर्ण की सीमाअ भी इसे नहीं छूती| यह संगम राष्ट्रीयता का संवाहक रहा है और आगे भी रहेगा |

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्"

जहाँ भी दो या दो से अधिक प्रवाह एक साथ मिलकर बहने लगते हैं वही प्रयाग है | प्रयागराज मनुष्यों का ही संगम नहीं कराता वरन् वह भाषाओं का संगम भी बन जाता है जिसमें संस्कृत, हिंदी तथा देश की समस्त भाषाएं सम्मिलित हो जाती हैं | यहाँ तक कि अंग्रेजी भी राष्ट्रीयता की संवाहिका बन जाती है |

"ऊँ विष्णुः विष्णुः विष्णुः"

"श्रीमद् भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराद्या प्रवर्तमानस्य अद्यम ब्रह्मणोन्हि द्वितीय प्रहरार्द्धे श्रीश्वेत वाराहकल्पे वैवस्वत मंवत्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे भारतवर्षे भरत खण्डे जम्बूद्विपे आर्यावर्तैकदेशांतर्गते ब्रह्मावर्त देशे विष्णु प्रजापति क्षेत्रे षटकुलमध्ये ? अंतर्वेद्यां भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे कालिंद्या उत्तरे तीरे वटस्य उत्तर दिक् भागे विष्णुपदे बौद्धावतारे वृषनाम सम्वत्सरे दक्षिणायने/ उत्तरायणे मासानां मासोत्तमे मासे माघ मासे कृष्णपक्षे/ शुक्लपक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे |"

(सत्य ब्रह्म की कृपा से आज इस ब्रह्मा के प्रथम दिन के द्वितीय प्रहर के उत्तरार्ध में श्री श्वेतवराहकल्प में जम्बूद्वीप के भरत खण्ड के आर्यावर्त देश के अंतर्गत कलियुग के प्रथम चरण में (प्रयाग) पुण्य क्षेत्र में(अमुक) मास (अमुक) पक्ष (अमुक) तिथि (अमुक) दिन

(अमुक) गोत्र में उत्पन्न (अमुक) शर्मा, वर्मा अथवा कोई और प्रातः अथवा मध्यान्ह अथवा सायं (अमुक) कर्म करते हैं)

•

<u>यज्ञ-पुरुष का मस्तक है</u>

प्रयाग प्रयाग को अतिरंजना में '"विराट पुरुष का मस्तक"' भी कह दिया गया है पर उसे 'यज्ञ-पुरुष का मस्तक' कहना अधिक उपयुक्त है क्योंकि प्राचीन काल में उसे प्रधान एवं प्रकृष्ट यज्ञ-भूमि के रूप में ब्रह्मपुराण में महिमांवित किया गया है | 'वास्तु-पुरुष मंडल' की तरह प्रयाग-परिसर को 'यज्ञ-पुरुष-मंडल' भी कहा जा सकता है |

'मनुस्मृति' में मनु द्वारा उस 'मध्यदेश' की सीमा पूर्व में प्रयाग तक मानी गयी है जो उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल और पश्चिम में सरस्वती नदी के विलीन होने के स्थान 'विनशन' से घिरे भूभाग का नाम है|आधुनिक 'मध्यप्रदेश' और प्राचीन 'मध्यदेश' में बहुत अंतर है|

हिमवद्विंध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि |

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ||

प्रयाग के कंठ-भाग में तीर्थ समूह का निवास है,यह बात अवश्य मान्य है क्योंकि काशी,नैमिषारण्य, वृन्दावन,पुष्कर आदि अनेक उत्तर भारतीय तीर्थ हैं जहाँ अन्य तीर्थों को स्थापित कर लिया जाता है और परिक्रमा के रूप में स्थानीय देवताओं के अतिरिक्त उन सब का दर्शन आवश्यक माना जाता है |दक्षिण में कावेरी के तट पर और रामेश्वरम में समुद्र-तट ऐसा ही भाव देखा जाता है| हर तीर्थ,हर मंदिर एक को प्रधानता देते हुए दूसरे देवताओं को स्वीकृति प्रदान करता है| कुछ काल तक शैव-वैष्णव, शैव-शाक्त, सूर्य-नारायाण, नर-नारायण आदि में अंतर रहा, पर काल के प्रवाह में वह विलुप्त हो गया|दूरवर्ती सरस्वती विलुप्त होने के बाद प्रयाग में प्रकट मान ली गयी| प्रादेशिक तथा भावात्मक एकता का इससे बड़ा उदाहरण क्या होगा कि काशी आदि सप्तपुरियों ने भी प्रयाग का वर्चस्व मान लिया|शताध्यायी में शेषनाग द्वारा इसका वर्णन पौराणिक शैली में विस्तार पूर्वक किया गया है| मैं उसी नागवासुकि के समीप रहता हूँ जिसके पूज्य देवता वासुकि ने ही प्रयाग को तीर्थराज पद दिया और समुद्र-मंथन के समीप 'नेती' का कार्य किया|

प्रयाग का विस्तार बीस कोस तक माना गया है तथा अग्निपुराण और कूर्मपुराण में उसे पृथ्वी की जंघा भी बताया गया है| जघन्य पापों से मुक्ति देने वाली भूमि की इस काव्यात्मक कल्पना में आंतरिक संगति दिखायी देती है|अनेक सम्राटों एवं राजाओं द्वारा असंख्य अश्वमेघ-यज्ञ किये गये, इसका विवरण पुराणों में मिलता है, अतएव प्रयाग की पुण्य-भूमि, पुण्य-क्षेत्र के रूप में विख्यात हो गयी| प्रयाग को वैसे ही तीर्थराज की पदवी मिली जैसे तीर्थों के बीच उसे तीर्थराज का पद प्राप्त हुआ| 'प्रयाग' शब्द नदी-संगम का विशिष्ट अर्थ ग्रहण करके एक दूसरी सरणी रच देता है |जिसमें विष्णु-प्रयाग, देव-प्रयाग,रुद्र-प्रयाग आदि परिगणित किये जाते हैं |हर संगम सम्भवतः प्रयागराज से सम्बद्ध है और हर तीर्थ तीर्थराज का द्योतक| कर्नाटक में टीपू सुल्तान के मकबरे के पास तीन नदियों के मिलन को भी संगम नाम दिया जाता है| टीपू सदा गंगाजल का इस्तेमाल करता था|

प्रयाग सांसकृतिक केंद्र के रूप में सात्विकता का प्रतीक बना रहा है और आगे भी बना रहेगा| नागरिकता उसके परिसर में है किंतु भीतर का कल्पवासी त्रिवेणी तट पर आश्रमी जीवन व्यतीत करने का सुख पाता है|

प्रयाग विंध्याचल की दृढ़ता के साथ हिमालय के शिखरों की ऊँचाइयाँ छूने की भावना रखता है और नदी-तट-वासी होकर भी समुद्र की गहरायी में पैठने का साहस करता है| गंगासागर की तरह गंगाजल को खारे पानी में बदलने की कल्पना वह नहीं करता| क्षीरसागर बनाने की बात भले ही सोचता रहे| दशकों पूर्व कभी 'हिंदी-प्रवेशिका' में पढ़ा था:–

पास जिसके रत्नराशि अनंत और अशेष है|

क्या कभी वह सुरधुनी के सम सरितेश है|

मेरे देखने में बंगाल की खाड़ी का एक ऐसा नक्शा आया है जिसमें समुद्र के भीतर गंगा का प्रवाह लगभग उतनी ही दूर तक निर्दिष्ट है जितना वह गंगोत्री से लेकर गंगासागर से तक भूमि पर देखा जाता है| समुद्र में जाते ही नदियाँ समाप्त नहीं हो जातीं वरन् उन्हें बहुत दूर तक अस्तित्ववान् बनाये रखता है|

•

<u>शताध्यायी में प्रयाग और त्रिवेणी की विशद यश-गाथा</u>

पद्मपुराण के पाताल खण्ड में समाहित प्रयाग माहात्म्य के सौ अध्याय ही शताध्यायी के नाम से प्रसिद्ध है |

प्रयाग की अंतर्वेदी और बहिर्वेदी काअ जितना प्रामाणिक ज्ञान इस रचना में मिलता है उतना किसी और जगह नहीं|वस्तुतः इसी आधार पर प्रयाग की पूरी महिमा गायी जाती है|

प्रयाग के तीर्थराज क्यों कहा जाता है इसका सटीक उत्तर इस शताध्यायी में मिलता है|

तीर्थराज के विषय में ब्रह्मा के पुत्रों को जब उत्कट जिज्ञासा हुई तो वे पाताल चले गये क्योंकि शेषनाग ही वह रहस्य जानते थे| पातलपुरी का अद्भुत वर्णन पुराणकार ने किया है| सुवर्ण सिंहासन पर समासीन शेषनाग अनेक नाग-नागिनयों के बीच अपने हजार फनों से शोभित हो रहे थे|उन्होंने बहु नेत्रधारी अनंत को नमस्कार किया|उनकी जिज्ञासा के उत्तर में प्रयाग-माहात्मय में अद्वितीय वर्णन किया गया है|तीर्थों में प्रयाग श्रेष्ठतम है,यह उद्घोषणा वासुकि नाग की है|जिनकी समीपता मुझे भाग्य से मिल गयी|इसीलिए मैं मानों उन्हीं की कही बात कह रहा हूँ–

तीर्थं हि द्विविधं प्रोक्तं कामदं मोक्षदं तथा कामदं मोक्षदंनैव मोक्षदं कामदं न च ||24||

तत्रापि सर्व तीर्थानि तीर्थराजाज्ञाया बिना| कामदाने मोक्षदाने समर्थानि भवंति न ||25||

(तीर्थ दो प्रकार के होते हैं,एक कामना पूर्ण करने वाले, दूसरे मुक्ति देने वाले |जिस तीर्थ में सब प्रकार की शक्ति-सामर्थ्य हो,सबके मनोरथों को पूरा कर सके तो एकमात्र प्रयागराज ही इस कसौटी पर खरा उतरता है)

अथोच्यते तीर्थराज प्रयाग सर्वतोधिकः |

तस्य श्रृण्वन्तु माहात्म्यं मुनयः सनकादयः||28||

(धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सारे फल देने में समर्थ केवल प्रयाग ही है |)

नवें अध्याय में अक्षयवट के समीप स्वयं शिव बड़े वेग से ताण्डव नृत्य द्वारा वेणी माधव को रिझाते हैं | ब्रह्मा की यज्ञ सिद्धि के बाद जब माधव शिव के पास नाचते

हुए जाते हैं तो देखते हैं कि शिव स्वयं माधव-माधव रट रहे हैं| विदेवों की अद्‌वितीय एकता त्रिवेणी में ही संभव हुई|

वेदि-पूजन में कलश-स्थापन का विवरण कुम्भ-संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय लगता है| यद्‌यपि यहाँ अमृत का कोई प्रसंग नहीं है| कलश अक्षत हो यह अवश्य कहा गया है|

कलशं स्थापयेत तत्र ताम्रमव्रणमुत्तमम् ||22|| अध्याय 10

माधव का आराधन करते हुए शिव अनेक स्थलों पर वर्णित हैं और दोनों के नृत्य का भी उल्लेख है|पाँच योजन तक विस्तृत प्रयाग मण्डल मे पैर रखते ही अश्वमेघ का फल पग-पग पर मिलने लगता है|

पंचयोजन विस्तीर्ण प्रयागस्य तु मण्डलम् |

प्रविष्टस्यैव तद् भूयावश्वमेघः पदे-पदे ||40|| अध्याय32

अध्याय34 में एक थल पर प्रणव ध्वनि को त्रिवेणी रूप में परिकल्पित किया गया है| परब्रह्म वाचक ऊँ की मात्रात्मक विधा संगति प्रदर्शित की गयी है|

अकारः शारदा प्रोक्ता प्रद्‌युम्नस्तत्र देवता |

उकारो यमुना प्रोक्ता निरुद्‌धस्तज्जलात्मकः ||13||

मकरो जान्हवी गंगा तत्र संकर्षणो हरिः |

एवं त्रिवेणी विख्याता वेदबीजं निरुपिता ||14||

पहली बार इस तरह की कल्पना मैंने देखी और मुग्ध हुआ पुराणों काव्यमयता पर| उधर ‘वेद बीज’ ऊँ तो इधर जलमयी त्रिवेणी का वेदोपम रूप| इसे मैं सच्चा माहात्म्य निरुपण मानता हूँ जिसमें नयी कल्पना के साथ प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा भी समाहित है|

शताध्यायी ने त्रिवेणी की त्रिगुणात्मिका रूप में कल्पना भी की है फलतः सरस्वती को शुक्लाम्बरधरा न कहकर अरुणवर्णा निरुपित किया गया है| ब्रजभाषा में इसके अनेक प्रमाण हैं|

•

<u>गंगोद्भेद तीर्थ : गंग-यमुना के बीच विभेद और समंवय-भावना</u>

जब प्रयाग में आकर भागीरथी गंगा,यमुना में मिली तो गंगा से पुरातन नदी होकर भी यमुना ने गंगा को अर्ध्य प्रदान किया जिसे गंगा ने स्वीकार नहीं किया|तब यमुन को संदेह हुआ| उसने कहा- "गंगे! तुम पूज्य हो,फिर किस कारण मेरा दिया अर्ध्य नहीं लेती हो, इस विषय में जो तुम्हारा मत हो वह कहो |" गंगा बोली, तुम नदियों में बड़ी हो, इसलिए तुमसे मिलने ए मेरा नाम नष्ट हो जाएगा| यमुने ! तुम्हारे साथ से भी यदि मेरा नाम बना रहे तब मैं तुम्हारा दिया हुआ अर्ध्य ग्रहण करुंगी |" यमुना बोली "सौ योजन तक तुम्हारा ही नाम रहेगा |इसके आगे तुम अलग होकर जाना |" वहाँ यमुना से पूछ कर गंगा अलग हो गयी और प्रसन्नतापूर्वक समुद्र में मिल मिल गयी | जिस स्थान में इन दोनों नदियों की धारा अलग हुई है उसको 'गंगोद्भेद' कहते हैं |वह पवित्र तीर्थ है | वहाँ से सौ धाराओं में होकर यमुना समुद्रमें मिली और हजार धाराओं में गंगा समुद्र में मिलीं |

शताध्यायी में यह विवरण उत्तरार्ध, अध्याय 272 में श्लोक 40 से 50 तक दृष्टव्य है | भारतीय पुराण-कल्पना मानवीय भावों को जड़ चेतन तक व्याप्त करती हुई जिस लालित्य का सृजन करती है वह मुझे बहुत रोचक लगता है | संस्कृति की पहचान इन्हीं मौलिक कल्पनाओं से होती है |जहाँ सामान्यतया माअनव-बुद्धि नहीं जाती वहाँ यह पुराणकर अपनी प्रतिभा से नये संदर्भ जोड़कर चित्रमाला को पूर्ण कर देते हैं | ऐतिहासिक दृष्टि से जो तथ्य महत्वपूर्ण होते हैं उन्हें भी पुराणकार स्मरणीय और ग्राह्य बनाकर लोकप्रियता प्रदान कर देते हैं | कल्पित प्रश्न और वैसे ही कल्पित उत्तर इतने विश्वसनीय बना दिये जाते हैं कि लोकमानस उन्हें इतिहास की तरह जानने लगता है | विसंगति वहाँ होती है जहाँ स्वार्थपरता आत्मघाती मनोवृत्ति को प्रश्रय देने लगती है |

•

<u>साधु-समाज और संन्यासियों का संगठन</u>

प्रतिष्ठानपुरी(झूँसी) में कुमारिल भट्ट का आत्मदाह और प्रयाग में ही शंकर द्वारा उनके समक्ष मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने का संकल्प | 'एकता के देवदूत शंकराचार्य' नामक वर्ष 1988 में प्रकाशित नयी पुस्तक में गहन एवं प्रामाणिक अध्ययन के साथ डॉ.दशरथ ओझा जैसे मनीषी लेखक ने इस घटना का जो औपन्यासिक विवरण दिया है वह सिद्ध

करता है कि आठवीं शती ईसवी में तीर्थराज प्रयाग ही इस नये जागरण का केंद्र बना |क्या 'झूँसी' शब्द उस तुषानल में हुए बौद्ध-भिक्षु के 'ध्वंस' की याद तो अपने में नहीं छिपाये है, मैं यही सोच रहा हूँ | पूरी कथा यहाँ नहीं दी जा रही है पर पुस्तक में अवश्य पठनीय है| यों झूँसी किसी बड़े ध्वंस या श्मशानघाट की द्योतक भी हो सकती है | उसमें भारी उलट-पलट हुआ ऐसा लोक-विश्वास अभी तक पाया जाता है |

आदि शंकराचार्य के मन में भारतवर्ष में चार पीठों की स्थापना का विचार चार कुम्भ स्थलों के समानांतर उत्पन्न हुआ होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है, वैसे दोनों में स्थान-भेद तो है ही |चार मठों की स्थापना के पीछे साधु-समाज को संगठित करने तथा उनके द्वारा अद्वैतवाद का प्रचा कराने का संकल्प भी रहा होगा ऐसा लगता है |दशनामी संन्यासियों को अलग-अलग पीठों से किस प्रकार संलग्न कियाअ गया है यह जानना स्वयं एक रोचक विषय है जिसका सांस्कृतिक महत्व निर्विवाद है | 'वन और अरण्य' नामक सन्यासी पूर्व में जगन्नाथपुरी के गोवर्धनपीठ से जुड़ गये | 'तीर्थ और आश्रम' नामधारी संन्यासी पश्चिम में द्वारिका स्थित शारदापीठ से संलग्न माने गये | उत्तर में बदरीनाथ धाअम के ज्योतिपीठ(जोशीमठ) से 'गिरी' ,'पर्वत' और 'सागर' नामक सन्यासी सम्बद्ध कर दिये गये | 'पुरी' 'भारती' और 'सरस्वती' नामक सन्यासी दक्षिण के श्रृंगेरीपीठ से जोड़ दिये गये | 'सागर' नामधारी सन्यासी उत्तर में पहुँच गये यह मुझे आश्चर्यजनक लगता है क्योंकि सागर तो दक्षिण में है और गिरी-पर्वत उत्तर में | सन्यासियों को दस विशेष नाम कैसे मिले और उनकी तुलनात्मक स्थिति क्या रही है यह दूसरा विषय है जिसमें मेरी कोई गति नहीं है |कालांतर में 'दण्डी' और 'गोसाई' दो भेद हो गये |तीर्थ, आश्रम, सरस्वती और भारती नामधारी संन्यासी 'दण्डी' कहलाये क्योंकि वे दीक्षा के साथ दण्ड का व्रत लेते थे जो उनके मनोगत अनुशासन का प्रतीक था |शेष छः संन्यासी वर्ग जो उपर उल्लिखित हैं, 'गोसाई' कहलाते हैं | इन्द्रियों की संज्ञा 'गो' है उनका स्वामित्व अर्जित करने वाला ही गोस्वामी कहलाने का अधिकारी है | 'गोसाई' उसी का रूपांतर है |

प्रयाग दारागंज में ही अनेक साधु-संगठन शताब्दियों पूर्व की परम्परा का गौरव प्रदर्शित करते हैं जिनमें निरंजनी अखाड़ा और निर्वाणी अखाड़ा विशेष प्रसिद्ध हैं | रामानुजी, रामानंदी तथा अन्य अनेक वैष्णव सम्प्रदायों के मंदिर एवं धर्म-केंद्र पर्याप्त प्रसिद्ध हैं| निम्बार्क समुदाय का केंद्र विशेष सक्रिय रहा है |

•

<u>मृत-अमृत का विवेक और भारतीय संस्कृति</u>

मृत और अमृत का विवेक तथा अमृत पर आस्था भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी पहचान है| सुर और असुर दोनों अमृत की कामना करते हैं |स्वर्ग का सर्वोत्तम पदार्थ अमृत ही माना जाता है |स्वर्ग की कामना को इतना उत्कट बना दिया गया कि अमरत्व के लिए लोग मृत्यु का भी वरण करने लगे |आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य या तो 'मुक्ति' रही या अक्षरत्व की प्राप्ति |दोनों के भीतर आनंद की अनुभूति सर्वोपरि मानी गयी है |अमृतत्व की चरम सीमा है परमानंद जो जीव को परमात्मा से जोड़ कर सार्थक बना देता है |जिसे परमात्मा पर विश्वास नहीं है वह भी आत्मानंद की भावना कर सकता है |मृत्यु-भय से उपर उठ जाना भी अमृतत्व की पहचान बन जाता है |शरीर और जीव में अंतर करते हुए जीव की उर्ध्व-चेतना को सांसारिक अधोगति से ऊपर उठाना साहस की बात रही है |ब्रह्मज्ञानी प्रणव को धनुष बनाकर अपने लक्ष्य का निर्धारण करता है |

प्रणव धनुः शरोह्योत्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते |

वैदिक चिंतन ने अमृत को 'सोम' कहा है और 'प्राण' भी माना है | वस्तुतः वेदों में 'अमृत' को अनेकानेक रूपों में परिभाषित किया गया है | हंसराज द्वारा संग्रहित तथा भगदद्त द्वारा प्रस्तुत 'वैदिक कोशः' में पृ.39-40 पर 'अमृत' के 20-21 संदर्भ दियेगये हैं और अंत में यजुर्वेद (11/35) के प्रसिद्ध मंत्र 'अमृत पुत्राः' का निम्नलिखित रूप में उद्धरण दे दिया गया है– **प्रजापतिर्वाअमृतस्य विश्वेदेवः पुत्राः**

–श.6/3/1/17

इसके पूर्व अमृतः को (यजु 11/5) 'प्रजापतिर्वा अमृतः' मंत्र में प्रजापति को स्वयं अमृत कहा गया है |

अमृतान्मृत्युः (निवर्तते)

शतपथ 10/2/6/19

से स्पष्ट है कि मृत्यु से मुक्ति, निर्वाण या निवर्तन ही अमृत का मूल रूप है | शतपथ ब्राह्मण ने इसी आधाअर पर मनुष्यों द्वारा अमृतत्व प्राप्ति का उद्घोष किया है :- अतद्वै मनुष्यस्यामृतत्त्वं यत्सर्वमायुरेति 9/5/1/10

इसमें मनुष्यों की पूरी आयु का संदर्भ दिया गया है और आजीवन अमृत का अनुभव करने वाले ही सार्थक जीवन जीते हैं, यही निरुपित किया गया है| मृत्यु न हो, ऐसा भाव नहीं है |प्राणों को ही अमृत कहा गया है जैसा ऊपर प्रणव और सोम के संदर्भ में संकेतित है |

अमृतं वै प्राणाः | गो.उ.1/13

अमृतं वै प्राणाः (प्राणइत्यस्य स्थाने 'प्रणव')

कई उपनिषदों में 'अमृत' को 'आप' यानी जल कहा गया है |

अमृतमापः, अमृतस्वं वा आपः, आदि |

शतपथ ने 'सोम' के साथ 'हिरण्य' अर्थात सुवर्ण को अमृत कहा है | भौतिक रूप में जो महत्व सोने को मिला है, आध्यात्मिक क्षेत्र में वही महत्व सोम रस को प्राप्त हुआ | 'अग्नि', 'आदित्य' दोनों को अमृत स्वरूप बताया गया है:-

आदित्योमृतम् श.10/2/6/16

अग्निमृतम् श.10/2/6/17

सहस्त्र पेरिवत्सरान् 11 वै. 3/12/9/3 से निरंतर हजारों वर्षों तक चलने वाली अमृत ध्वनि की कल्पना गयी है |

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैदिक दर्शन में प्राण, प्रणव, सोम, आप,आदित्य, अग्नि, और ध्वनि का नैरंतर्य ही 'अमृत' है | विष का विलोम अमृत मृत्यु का भी विलोम बन जाता है |कदाचित् इसी आधार पर काव्यशात्र में 'अमृतध्वनि' छंद की कल्पना की गयी है जिसमें ब्रजभाषा कवियों में भूषण का नाम अविस्मरणीय है| बाद के रामलाल आदि कवियों ने भी छंद में काव्य रचना की है|इसकी पाठ-विधि भी विशेष प्राणात्मक होती है| हर कोई इसे सुना नहीं सकता और न इसका महत्व ही समझ सकता है| कविता को स्वयं अमृतमय माना गया है | 'काव्यामृत' शब्द संस्कृत और हिंदी दोनो में प्रचलित रहा है |

गीता में मृत और अमृत तत्व का दार्शनिक रूप में गहरा विवेचन किया गया है जो कालपरक दृष्टि रखता है | गीता ने कर्म को ही प्रधान आधार माना है और यजुर्वेद का कथन है– **शरीरेणामृतो सद्य्मो मृतो सद्वध्मयाः**

वा कर्मणा वेति यहै तद ववन विधर्या | (श.10/4/3/9)

विद्या-अविद्या का अंतर कर्म निर्धारण में गीता ने भी माना है|परवर्ती 'अमृत-बिंदु' उपनिषद ने ज्ञान और योग को प्रधान माना है और सन्यास को अधिक महत्व दिया है| अमृतद्रव-संयुक्त निगम कल्पतरु का फल ही है श्रीमद्भागवत जिसे शुकदेव रूपी शुक ने चख कर देखा और सबको कथामृत प्रदान किया| सब उनके कृतज्ञ हैं|

मृतं या मृत्यं के पर्याय समझ कर काल के तीन रूप माने गये हैं|

1- कालः कलयतामहरु-30

भूत, भविष्य, वर्तमानात्मक संख्याबद्ध, क्रमबद्ध काल

नवनिमेष....काल जासुवोदण्ड | (विभूति-30)

2-विनाशकारी काल-विभूति(34) मृत्युरूप काल

मृत्युः सर्वहश्र्वाहमुद्भवश्र्व भविष्याम् |

(गीता-34 श्लोक)

महाप्रलय के बाद साम्य की अवस्था |

3- महाकाल- (श्लोक-33)

अक्षयकाल

अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वसोमुखः ||33||

अमृत को भी इसी तरह विविधात्मक रूप में देखा जा सकता है |

गीता का चिंतन अत्यंत प्रौढ़ है क्योंकि उसने अपनी कलात्मक धारणा में मृत्यु के साथ अमृत को जोड़कर जीवन की विराट कल्पना की है जहाँ निरंतर निर्माण और विनाश प्रक्रिया चलती रहती है| ज्ञानी वही है जो मृत्यु से साक्षात्कार करके ऐसी स्थिति तक पहुँच जाय कि वह उसे दुख न पहुँचाये |ऐसी आंतरिक स्थिति मानवीयता काअ तिरस्कार नहीं करती वरन् एक भिन्न स्तर पर मानवता को 'सर्वहितेरतः' रूप में प्रतिष्ठित करती है

|व्यक्ति का ऐसा संस्कार ही सच्ची संस्कृति है | इस प्रकार ग्रहीत भारतीय संसकृति भाअरत से सम्बद्ध होकर विश्वव्यापी होने की क्षमता रखती है | 'कुम्भ' तभी महाकुम्भ होने की सार्थकता रक्खेगा जब इस सांस्कृतिक दृष्टि को आत्मसात करके सक्रिय बनाने का संकल्प करे | केवल मंत्र रूप में 'संकल्प' का उच्चारण काफी नहीं है |

ज्योतिषपरक'अमृतांश कला' का उल्लेख कुम्भ के ज्योतिष परक संदर्भ में किया जा चुका है वैसे इस संदर्भ में 'अमृतयोग' शब्द प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश में देखा जा सकता है | ऐसे शुभदायक योग में बृहस्पति का महत्व सबसे अधिक माना जाता है जो कुम्भ का कारण बना | भक्ति ने 'भजनामृत' को जीवन का सार माना है पर लौकिक दृष्टि से कुछ और भी कहा जा सकता है | अमृत फल के रूप में इलाहाबादी अमरूद भी शब्दशः अमृत का ही रुपांतर है | अमृत से अमरुत और अमरुद रूप विकसित हो जाता है |दक्षिण में अमृत का ऐसा उच्चारण मिलता ही है |

आम्र,इमली, अमरख आदि फलों के आधार पर 'रलयोरभेदात्' से प्रेरित अमृत अम्लित हो गया, और इस स्वाद भेद से स्त्रियों को अधिक प्रिय लगने लगा | हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अमृत को अम्ल से जोड़ा है |

अमृत के पर्यायवाची शब्द चंद्रमा के आधार बनते हैं जो सबको ज्ञात है | पौराणिक वैद्य धवंतरी द्वारा औषधियों के संयोग से उत्पन्न औषधि रूप अमृत और उन्हीं के द्वारा समुद्रकुम्भ का मूल अर्थ वैदिक विचारधारा का ही -मंथन से प्राप्त अमृत- उपवृहणन करता है| अमृत की कामना पूरे भारतीय जीवन पर छायी हुई है |

प्रसाद की जन्मशती और कामायनी की अर्धशती पर कवि और उसकी रचना कासम्मान हम उसके द्वारा लिखी गयी उन सुप्रसिद्ध पंक्तियों से करते हैं जो मनु से अधिक मानवता की विजय का कीर्तिमान करती हैं–

डरो मत अरे अमृत संतान

अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,

पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र

खिंची आवेगी सफल समृद्धि |

जलधि के फूटे कितने उत्स

द्विप,कच्छप डूबें-उतराँय,

किंतु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति

अभ्युदय का कर रही उपाय |

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं,हो निरुपाय,

समंवय उसका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय |

(कामायनी,श्रद्धा,पृ59.)

•

गंगा

गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती फिर वही गंगा की गंगा |वह मुझे याद दिलाती है हिमाचल की बर्फ से ढकी चोटियों की और गहरी घाटियों की, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, और उनके नीचे के उपजाऊ और दूरदूर फैले मैदान जहाँ का-म करते मेरी ज़िंदगी गुजरी है | मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कुराते, उछलतेकूदते देखा है और देखा है शाम के साये में उदास-, काली सी चादर ओढ़े हुए, भेदभरी, जाड़ों में सिमटी सी आहिस्ते-आहिस्ते बहती सुंदर धारा और बरसात में दहाड़ती, गरजती हुई, समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिये और सागर को बरबाद करने की शक्ति लिए हुए | यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की,यादगार की, जो बहती आयी है वर्तमान तक और बहती चली जा रही भविष्य के महासागर की ओर |

भले ही मैंने पुरानी परम्पराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया हो और मैं चाहता भी हूँ कि हिंदुस्तान इन सब जंजीरों को तोड़ दे जिनसे वह जकड़ा है,जो उसको आगे बढ़ने से रोकती है और जो देश में रहने वालों में फूट डालती है,जो बेशुमार लोगों को दबाये रखती है

और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती है |चाहे यह सब मैं चाहता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने को इन पुरानी बातों से बिल्कुल अलग कर लूँ |

(जवाहरलाल नेहरू की वसियत का एक अंश)

•